ॐ
चिदाकाश की चिन्मयी लीला
स्वामी श्रीमद् रामहर्षणदास जी महाराज

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

॥ श्री सिद्धि लक्ष्मीनिधिभ्यां नमः ॥

चिदाकाश-की-चिन्मयी-लीला

श्रीमद् रामहर्षण दास

स्वामिनाप्रणीतं

चिदाकाश-की-चिन्मयी लीला

लेखक :

श्रीमद् रामहर्षण दास जी

प्रकाशक :

श्रीमती गीता सिंह
पत्नी इं० कृष्ण कुमार सिंह
उपपरियोजना प्रबन्धक
सेतु निर्माण इकाई, मऊ
मऊ (उ० प्र०)

श्रीमती गीता सिंह

प्रथमावृत्ति : १९९४

न्योछावर : ४० रु० मात्र

मुद्रक :

श्री वैष्णव प्रेस
दारागंज, इलाहाबाद
दूरभाष-६०७४६३

आभार :

(१) इं० डी० आर० विद्यार्थी
उपपरियोजना प्रबन्धक
सेतु निर्माण इकाई, रायबरेली।

(२) इं० बी० डी० द्विवेदी
अवर अभियन्ता
सेतु निर्माण इकाई, रायबरेली।
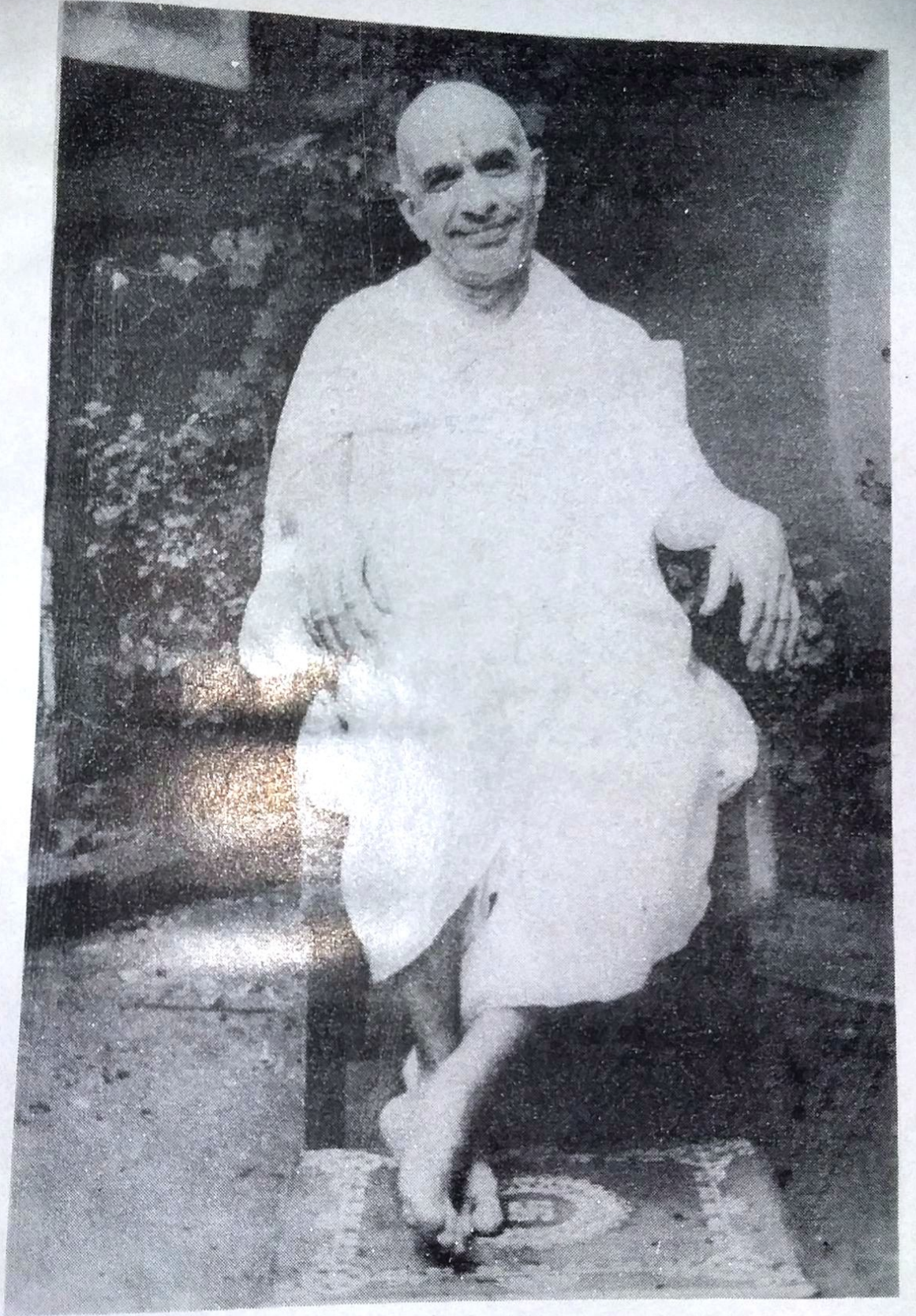
ग्रन्थकार
अनन्त श्री विभूषित, प्रेममूर्ति, पंचरसाचार्य
श्रीमद् स्वामी राम हर्षण दास जी महाराज

न देगा ? ठीक है न !" कहकर अपने स्नेह से राम को सराबोर कर दिया, ब्रह्मर्षि ने !

"आचार्य प्रवर ! आज आपश्री का स्नेहभाजन बनकर, राम को कुछ पाना शेष नहीं रह गया, बिना साधन के ही राम, राम हो गया। जय हो, सद्गुरु-कृपा कोर की।"

"दोनों श्याल-भाम कर-सम्पुटी मुद्रा में खड़े क्यों हो गये ? अच्छा ! हमारा समय अधिक ले-लेने से कहीं दैनिकचर्या में अन्तराय न हो आचार्य को, इस भय से राजभवन जाने की आज्ञा चाह रहे हो ? राम ! वेद-विदित सभी अनुष्ठानों को अपनाने का मात्र कारण आपकी अपरोक्ष प्राप्ति है अतएव मेरे सभी साधन-वृक्ष सफल हो गये हैं, अब मुझे रसमय रसाल का अनुभव करते रहना ही सहज चर्या और स्वरूप प्रतीत हो रहा है। अच्छा आप लोग अपने आवास भवन जायँ और मैं भी आपके विकसित मुख-पंकज पराग पीने के लिये कालक्षेप करूँ।"

सस्नेह सबको दण्डवत करते हुए उठा-उठाकर अपने अमोघ आशीर्वाद का प्रसाद देकर, साश्रु विदा किया आचार्य श्री ने। हम सब लोग राजभवन में प्रवेश कर, योगेश्वर की महानता का वर्णन परस्पर करके सुखी हुए। इस प्रकार लक्ष्मीनिधि-वल्लभा अपने प्राण वल्लभ से राम-कथा श्रवण-कर, हर्षातिरेक की स्थिति का अनुभव करने लगीं, पुनः प्रकृतिस्थ होकर, कथा श्रवण करने की प्रार्थना पति परमेश्वर से करने लगीं।

× × ×

२३

अहो ! लक्ष्मीनिधि-निकुंज की अंतिम मंजिल के ऊपर से महाराज मिथि की बसाई, इस मिथिला नामक नगरी के चतुर्दिक दृश्यों का दर्शन अतीव नेत्र-प्रिय, मन-मोहक, चित्ताकर्षक, बुद्धि-विस्मायक और आत्माह्लादक सिद्ध हो रहा है, न जाने इस नवल निमिनगरी में क्या है ? जिसके मात्र परकोटे को देखकर राम का चित्त आश्चर्य चकित हो गया था। भीतर प्रवेश करने पर तो वह अपने व अपने धाम और स्वजनों को भूल गया, बार-बार अपने को सँभालता कि नगर निवासी यह न जानने पायें कि यह श्यामला राजकुमार यहाँ की नगण्य वस्तुओं को भी देखकर, मन-मुग्ध हो रहा है अन्यथा लोग कहेंगे कि लागता है पूर्व में इसे ऐसी दर्शनीय वस्तुओं का कभी स्वप्न दर्शन भी नहीं हुआ, तभी तो जिस किसी प्राणी-

पदार्थ को अतृप्त आँखों से देखता है यह, इसके पिता का राज्य अतिशय अभाव ग्रस्त प्रतीत होता है।

प्रथम दिन जब राम अपने विद्या-गुरु श्री विश्वामित्र जी के साथ एक अमराई में आया तब वीतराग ऋषिराज के मन ने, योगिराज के एक नगर बाह्य आम्र बगीचे को देखकर, अमरावती की अमराई की उपमा, निमिनगर के साथ करना, उपमेय का अनादर करना समझकर नहीं किया, अपितु उसे अनुपमेय बतलाकर, मुनिवर का मन उसका अनुभव करने के लिये मचल गया। तदनन्तर वहाँ विश्राम करने के लिये अपने मन की बात, अपने प्रिय शिष्य राम से कही उन्होंने। उत्तर मिला उन्हें कि यह विचार आप श्री का सर्वोत्तम है।

अहो! श्री सद्‌गुरुदेव तो अन्तर्यामी हैं ही, साथ ही शिष्यवत्सल भी है। प्रत्यक्ष में प्रमाण क्या? शिष्य मन में अन्तर्हित होकर, उनके मन ने इस अमराई का अनुभव करने के लिये, शिष्य को सुअवसर दिया है। यहाँ तक तो राम अपने रामत्व को किसी प्रकार सुरक्षित रखने में सफलता के साथ रहा किन्तु नगर दर्शन करने की आतुरता ने गुरुदेव के समक्ष ही, उसे अपूर्व अदर्शित वस्तुओं के देखने की लालच से भरा-वनवासी-पुत्र के समान बना दिया, गंभीरत्व और चक्रवर्ती कुमारत्व में पानी फिर गया, पर वह बेचारा कर ही क्या सकता था? वह तो किसी के द्वारा जादूगरी का खिलौना व मोहन मिश्रित वशीकरण मन्त्र से मोहित बना दिया गया था।

आचार्य-आज्ञा से वह सानुज आगे नगर में प्रवेश किया तो छोटे-छोटे खेलने वाले बालक उसे मिल गये, बस! वह उन्हीं में रम गया, राम ही तो ठहरा। इस पुनीत नगरी के प्रेमी बालक, उस चक्रवर्ती कुमार का हाथ पकड़कर, अपने-अपने भवन उसी प्रकार ले जाते जैसे टूटे दाढ़ वाले बुड्ढे सिंह को नाथने वाली रस्सी पकड़कर, लड़के लोग घसीटते ले जायँ, लज्जा भी ऐसे पुरुष का साथ छोड़ने में क्यों हिचकिचाये! पुनः कुछ चलकर अटों में आरोहित विद्युत वर्णा नवल-नायिकाओं का उमा-रमा-ब्रह्माणी जी के समान अपूर्वभूत साक्षात्, महादेवी समझकर उन्नत शिर, निम्न नयन वह राजकुमार दर्शन कर लेता था। अपने आचार्य के निर्धारित समय पर न पहुँचने का अपराध भी उक्त कारणों से, उससे बने बिना न रहा।

इस प्रकार उसकी दयनीय-दशा उस बेचारे का भंडाफोर कर रही थी। फूल वाटिका की वार्ता तो बड़ी ही विचित्र ठहरी। प्रथम पुष्प वाटिका

७

की रम्यता ने, अपने में रमाकर, उसे सुख-सिन्धु में अवगाहन करने के लिये बाध्य कर दिया, पुष्प, गुरु-पूजन के लिये लेना है, भूल गया वह। माली-मालिनियों तथा वहाँ के वृक्ष रूप देवों के साथ, उसके अनुज से भी उसकी मानसिक-वृत्ति व्यथाजनित दुर्दशा गुप्त न रह सकी, स्वयं उस संकोच-निधान ने अपने अनुज से ही नहीं अपितु गुरुदेव से भी निश्छल होकर कहिये या निर्लज्ज होकर कहने में नाम मात्र का संकोच नहीं किया। उस खुआरी ने सायंकालीन चन्द्रमा को देखकर प्रातः कालोदित किसी अन्य चन्द्रमा का स्मरण, शाम को सबेरा बना दिया था। इस प्रकार मिथिला-माधुरी से अभिभूत वह कुमार, मिथिला को अपना बना लेने पर भी, उसे जितना ही देखता है, उतना ही उसमें नया रंग, नया-निखार, नया स्नेह, नया दर्शन वृद्धिगत होता जाता है। यह वार्ता अपना एकान्तिक सखा समझकर, भाम ने अपने श्याल से कही।

"आनन्द मूर्ते! एक योगी जब अन्तर्मुख होता है, तब उसकी आत्मा सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा के एकीभाव में स्थित हो जाती है और उसकी सर्वेन्द्रियाँ बहिर्मुखी वृत्ति को छोड़कर, अन्तर्मुखी होकर अन्तर रमने की स्वभाव वाली हो जाती हैं, उन्हें बाह्य अपेक्षा नहीं होती तथा संस्कार के कारण, अन्तरजगत के चिन्मय चिदाकाश की भीति पर उदित दृश्यों का समनुभव करती है। आत्म-स्थिति दशा में शरीर से सम्बन्धित वर्ण, आश्रम नाम, ग्राम, प्रभुता, प्रतिभा, प्रभाव आदि स्मृति के तार टूट जाते हैं, अर्थात् आत्मा से पृथक हो जाते हैं। स्वरूपतः आत्मा की शक्ति-सामर्थ्य व सकाश से अन्तर्मुखी सूक्ष्म इन्द्रियाँ चाहे जैसे दृश्यों का दर्शन करें, उनकी अन्तर्मुखता में अन्तर नहीं आता। अन्तर्देश के दृश्यों में एक ही अनेक रूपों में रहता है, वहाँ उसे किससे पराभव और किससे लज्जा है।

जिस राम की मिथिलापुर-प्रवास संबंधी गाथा, आपश्री ने मिथिलेश कुँवर को सुनाई है, उस राम के अच्युत अयोध्या धाम का आत्मा मिथिला धाम है और अयोध्यास्थ राम की आत्मा मिथिलास्थ मैथिल हैं अतएव राम का मिथिला में स्थित होकर, अयोध्या का भूल जाना स्वरूपगत धर्म ही है और राम का मैथिल लोगों का दर्शन कर (अन्तर्मुख होने से बाह्य जगत के समान) अपने बाह्य स्वजनों को भूल जाना भी स्वाभाविक है, जब अकेले राम अपने आत्मा में रमण करते रहे तो किसी की वहाँ स्थिति न होने के कारण, किससे लाज की जाय। प्रभुता आदि का सर्वत्याग, उस स्थिति में स्वयं हो जाता है क्यों कि इनकी स्थिति आत्म प्रदेश में नहीं है। उपर्युक्त

दृष्टान्त से आपको तथ्य वार्ता को समझने में विलम्ब न होगा, पुनः श्रवण, करें।

सर्वात्मन् ! अपनी शेष-भोग्य वस्तु का विनियोग, सर्व शेषी, सर्व भोक्ता अपनी इच्छानुसार विभिन्न प्रकारों से करता है, इसमें वह सदा स्वतंत्र सम्राट है, पुनः श्रवण करें······प्रेमास्पद अपने प्रेमी के मनोगत-भावों और स्वयं के भावों का सम्मिश्रण करके, ऐसे अनोखे भावों को दोनों के बीच उपस्थित करता है, जिसे देखकर स्वयं प्रेमी के सहित प्रेमास्पद, भाव के भोगान्न को पाकर तृप्त नहीं होते, अधिक क्या कहें, उसका वर्णन सुनकर श्रवणवन्त भाव विभोर हो जाते हैं अतः आपश्री उस हमारे राम पर आक्षेप न करें। उसने तो मृतप्राय मिथिलापुरी को जीवन दान दिया है अतः सब मिथिलावासी उसके कृतज्ञ हैं, भविष्य में रहेंगे।

आपने कभी हमारे राम जैसे अनन्त कायवैभवशाली, दृष्टचित्तापहारी किसी अन्य पुरुष के चन्द्रानन का दर्शन किया है, जो पुंसा-मोहन स्वरूप से समायुक्त हो। क्यों नहीं बोल रहे, निम्न नयन करने से काम नहीं चलेगा।"

इतना कहने के पश्चात् श्री राम का मनोज्ञ मनमोहक चित्र अपने कक्ष में चलकर श्याल ने भाम को दिखाया।

"सखे ! ये कहाँ रहते हैं ? किसके कुमार हैं ? हमें इनसे मिलने की त्वरा उत्पन्न हो रही है। हम इन्हें अपना मित्र बनाकर इनके साथ मज्जन-अशन और शयन जनित आनन्द का अनुभव करेंगे, शीघ्र इनसे मिला दें, आप !" कहकर प्रेम चिह्नों से चिह्नित हो गये, रघुवंश-विभूषण।

निमिकुमार ने कहा कि, "यह वही राम हैं, जिनके विषय में आप आक्षेप भरी बातें कर रहे थे।"

"अच्छा······! यह वही हैं ?"······कहकर रघुकुल-भूषण निमिकुल-भूषण को हृदय में लगाकर, उनसे लिपट गये। दोनों श्याल-भाम, अपार आनन्द की अनुभूति में निमग्न हो गये।

इस प्रकार लक्ष्मीनिधि जी, अपने और अपने राम की अन्तर कथा को अपनी अर्द्धाङ्गिनी को सुनाकर, श्री राम की स्मृति में खो-से गये। अतृप्तकरणा श्री सिद्धिजी पति के प्रकृतिस्थ होने पर पुनः कथा श्रवण करने की मुद्रा में स्थित हो गईं।

× × ×

२४

अहो ! श्याल-भाम की गौर-श्याम-वपुषकान्ति त्रिभुवन मनमोहनी एवं असमोर्ध्व है, दोनों की देह से क्या अनोखी आभा उत्पन्न होकर निकट प्रान्त को श्याम-गौर तेज के सम्मिश्रण से तद्रूप बना रही है, पर्यङ्क पर विराजित युगल कुमार प्रेम के सिन्धु को पूर्ण पीकर भी अतृप्ति की अनुभूति करते से प्रतीत हो रहे हैं। ये कौन हैं ? क्या कर रहे हैं ? क्यों कर रहे हैं ? किसके लिये कर रहे हैं ? इनकी इस क्रिया का प्रयोजन क्या है ? इत्यादि विचार की धारा का सम्प्रवेग, युगपद दोनों के हृदय का स्पर्श कर अपने में अस्त कर लिया दोनों को तदनन्तर······प्रकृति के प्रभाव से दोनों अपने को प्रकृतिस्थ देखकर, पूर्व प्रश्न का समाधान पाने के लिये, एक-दूसरे का मुख देखने लगे।······

जिन दोनों के हृदय में उपर्युक्त प्रश्नों की माला पड़ी हुई दिखाई दी थी और अब श्री चित्त के चक्षुओं से दिखाई दे रही है, वे हैं द्रष्टा ?

श्याम-वपुष ने कहा—द्रष्टा किसे कहते हैं ? "दृश्य का दर्शन करने वाला पुरुष जो अपने को, जड़ दृश्य से सर्वथा अतीत विलक्षण चैतन्यघन सहज स्वरूप में स्थित कर, अनासक्त और कर्तृभाव से बिना अहं मम के, अन्तर और वाह्य दृश्यों को मात्र प्रकृति नटी की नर्तन क्रिया को जानता हुआ, साक्षी रूप से ज्ञान नेत्र के विषय का ज्ञान रखता है, उसे द्रष्टा कहते हैं।"

गौर-वपुष के समाधान पाकर दूसरे प्रश्न का उत्तर पाने की जिज्ञासा ने श्याम-वपुष को वरण कर लिया।

'अच्छा ! सुनें आप ! ये दोनों परस्पर परम विशुद्ध प्रेम के लेन-देन का व्यापार कर रहे हैं, लाभ में क्षण-क्षण होती हुई परिवृद्धि को देख-देखकर, इन दोनों के मन में लाभ के लोभ को संवरण करने की क्षमता नहीं रह गई है इसलिये इनका यह धंधा अनवरत अनन्तकाल तक चलता रहेगा, इसमें कोई विघ्नकारी शक्ति विघ्न उपस्थित नहीं कर सकती। अब तीसरे प्रश्न का समाधान पाने के समुत्सुक श्याम-वपुष भाई ! आप श्रवण करें, गौर-वपुष ने कहा—यह व्यापार इन दोनों का इनके स्वरूपगत है अर्थात् आगन्तुक नहीं है अपितु स्वभावजन्य है जैसे सुधाकर की किरणों में सहज सुधा और शीतलत्व एवं दिवाकर की किरणों में सहज प्रकाश सन्निहित है, अस्तु, इनका प्रेम धन्धा पवन के स्पन्दन के समान चलने में सदा समर्थ रहेगा, कल्पना करें कि ये भी यदि चाहें कि इस प्रेम धन्धे को

बन्द कर दें तो उसी प्रकार असफल रहेंगे जैसे ईख इच्छा करे कि हमारा रस सहज मीठा अब न हो तो वह प्रयत्न करने पर भी असफल ही रहेगा। अब चतुर्थ प्रश्न का उत्तर श्रवण करें, आप श्री।

यह प्रेम का लेन-देन इन दोनों का, स्वार्थ-शून्य अपने प्रति-सम्बन्धी को मात्र आत्यान्तिक आनन्द की अनुभूति हो इस चाह से युक्त होता है, 'तत् सुख सुखित्वम्' की भावना से पूर्णरूपेण भरा होता है यह। अहं और मम के बीज की समाप्ति हो जाने पर अर्थात् प्रकृति सम्बन्ध से विनिर्मुक्त होने के पश्चात् जब आतमा और परमात्मा का साक्षात् सम्प्रयोग हो जाता है, तब वे सहज स्नेही, एक-दूसरे के सुख-संप्राप्ति की इच्छा से युक्त स्वयं को प्रेमास्पद के लिये समझते हैं। आत्मानुरूप क्रिया का सहज संचालन (प्रेम प्रक्रिया) बिना साधन एवं बिना किसी क्रिया के उसी प्रकार होने लगता है जैसे सूर्य के उदय होते ही प्रकाश-साम्राज्य का संप्रदर्शन।

पाँचवी शंका का समाधान यह है कि—समुद्र में जैसे ऊर्मियाँ स्वाभाविक उठा करती हैं, वह जानबूझ कर अपने किसी प्रयोजन से उन्हें उर्ध्व आकाश की ओर नहीं फेंकता, उसका यह स्वरूपगत धर्म है अपने-आप लहरों द्वारा बाहर आये हुये सामुद्रिक पदार्थों से, जल से या जल जीवों से या उसके दर्शन से कोई भले लाभ उठा ले, वैसे ही सच्चिदानन्दात्मक आत्मा, परमात्मा के सिन्धु में प्रेम की भाव भरी लहरें परिलसित स्वभावतः होती रहती हैं किसी प्रयोजन के लिये बुद्धि पूर्वक प्रेम-प्रक्रियाओं का प्रदर्शन वह नहीं करता, प्रेमास्पद पर मीन की तरह प्रेम करना प्रेमी का स्वरूगत धर्म होता है, प्रेमास्पद के सुख के लिये हम उससे प्रेम करें, इस भावना का भी पुट, प्रेमी के प्रेमकोष में नहीं रहता, यदि ऐसा नहीं स्वीकार करते, तब तो प्रेम तत्व स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता, जब चाहे अपनी इच्छा से उसे उत्पन्नकर प्रतिसम्बन्धी के साथ लगाया जा सकता है मानना पड़ेगा, अस्तु, प्रेम किसी गुण व प्रयोजन से प्रेमास्पद के प्रति नहीं होता, वह अनन्य प्रयोजन वाला स्वरूपतः होता है। हाँ! यह बात और है कि प्रेमी के हृदय में 'स्व-सुख शून्यता' 'तत् सुख सुखित्वम्' की भावना और अपने कायिक-वाचिक-मानसिक चेष्टाओं से प्रेमास्पद को सुखी करने की इच्छा सन्निहित रहती है। अपने से कोई भी प्रेमियों के प्रेम-प्रकाश से प्रकाशित हो जाय और परमार्थ का शोधन कर ले, तो बात और है। प्रेमी मात्र प्रेम के अन्न का भूखा रहता है, जब देखो तब उसका पेट, पीठ से चिपका रहता है।

अहो ! ये संशय प्रश्न के पौधे तो हम दोनों के हृदय-मंदिर में जमे थे किन्तु उन्हें उखाड़ने के प्रयास में अग्रसर गौर वपुष हो गया. अतः श्याम-वपुष से वह चाहता है कि उक्त शंकाओं का समाधान कोई अन्य हो तो उसे श्यामश्री स्वयं श्री मुख से प्रतिसम्बन्धी को सुनाने की कृपा करें ।''

''गौर श्री का किया हुआ समाधान सर्वमान्य शास्त्रोचित है, श्याम को अच्छा लगा । इन दोनों व्यक्तियों के व्यापार से हम दोनों परिचित हो गये । जब श्याम-गौर में अभिन्न एकत्व है, तब गौर का किया हुआ समाधान श्याम ही का किया हुआ है कि नहीं ?''

''अवश्य ! अवश्य ! पूर्णरूपेण श्याम से समाधानित शब्दों का ही प्रयोग हो रहा था गौर-मुख से, जानते हुये व्यवहार प्रक्रिया की शुद्धता के लिये समाधान सुनने की जिज्ञासा का मात्र प्रयोजन था, साथ ही अहं का शिर न उठने की औषधि भी तो है यही ।''

श्याम-वपुष, गौर-वपुष एक-दूसरे की ओर मन्द मुसकान के साथ चित्तापहारी दृष्टि निक्षेप कर, अपने को संभाल न सके, परस्पर लिपट कर एक हो गये । इस प्रकार दोनों की प्रेम लीला विलम्ब तक चलती रही, अन्त में आलस्य के बार-बार कहने से दोनों तिरसठ के अंक की भाँति पर्यङ्क पर सो गये ।

इस प्रकार श्याम-गौर वपु वाले अभिन्न दो प्रेमियों की, प्रेम-कहानी पति मुख से श्रवणकर सिद्धि जी प्रेमविभोर हो गईं, पुनः प्रकृतिस्थ होने पर, राम कथामृत पान करने के लिये उनके कर्ण ललचाकर पाणि-पंकजों को माध्यम बनाये और उनकी सहायता से अपने मनोरथ को सिद्ध हुआ जानकर परम प्रसन्न हो गये ।

× × ×

२५

एक दिन नित्य नियम काल की ध्यान-स्थिति दशा में देखा कि नाम-रूप एवं अनुभव से रहित असंप्रज्ञात समाधि की स्थिति सहज वरण किये है किन्तु उस आकाश में श्री सीताराम की मनोहर झाँकी का आविर्भाव-तिरोभाव का क्रम इति को नहीं प्राप्त हो रहा है, प्रसन्नता से भरे चित्त के लय होने की स्थिति न प्राप्त होने से शान्ति का सिंहासन डगमगाने लगा । झाँकी के दर्शन में चित्त रमने लगता तो तुरन्त युगल

माधुरी के स्थान पर केवल आकाश शेष रहता। युगल-किशोर कहाँ गये, कौन बताये वहाँ ? चिदाकाश में ही चित्त जब विलीन होने की स्थिति में आ जाता तो युगल झाँकी का दर्शन उसी प्रकार क्षणिक हो जाता था जैसे बादलों से पूर्ण आकाश के मध्य विद्युत के चमक का। इधर का न उधर का होकर चित्त-चंचलता का वरण करने लगा। मैंने कहा चलो तुम्हें स्वाध्याय के देश में ले चलें, जिससे तुम्हें प्रसन्नता प्राप्त होगी। कोहवर कुंज की श्रवण की हुई, लीलाओं का चिन्तन चित्त प्रदेश में होने लगा, चित्त लीला के आकार का होकर, अपने को आश्रय देने वाले आत्मा का परिवर्तन कर, सीता-राम, सिद्धि, सखी-सेविका, कुंज और कुंज-स्थिता साधन सामग्रियों के आकार का बना दिया। उस समय आत्मा को यह ज्ञान था कि मैं इतने विग्रहों वाला होकर लीला कर रहा हूँ और तज्जनित लीलानुभूति के आनन्द का भी अनुभव कर रहा हूँ। इस प्रकार आनन्दप्रदा अष्टयामीय दैनिक लीलाओं का अनुभव करते-करते आनन्द के साथ शयन-कुंज की लीला का जब समय आया तो क्रमशः सेवा-निवृत्त परिकर द्रष्टा में अन्तर्हित (समाविष्ट) होते जाते, अन्त में श्री सिद्धि जी भी पाद-संवाहन सेवा करते-करते, युगल झाँकी को, आलस भरी जान प्रस्थान करके, द्रष्टा में अन्तर्भुक हो गई, द्रष्टा यह सब देख रहा है तथा आनन्द के अनुभव में निमग्न शय्याशन में शयन करते युगल किशोर को देखकर स्वयं वहाँ से अपने बाहर आने को भी देख रहा है और अपने आत्मा के युगल रूपों की शयन झाँकी का भी झरोखा दर्शन ले रहा है।"

"मेरे प्राणेश्वर ! अपने अनन्य स्थित को आप श्री के दर्शन में इतनी देर क्यों हुई ?"

"मुझे अपनी अनन्य स्थिता प्रियतमा के दर्शन का सौभाग्योदय इतने विलम्ब से क्यों हुआ ?"

"आपकी अनन्या आपके आह्लाद विवर्धन के लिये, विविध रसानुभूति कराने वाले व्यञ्जनों का निर्माण कर रही थी, अस्तु, आपके वियोग की घड़ी को वियोगिनी होकर भी सहनशीला इसलिये बनी थी की इन अन्न पदार्थों को पाने से, ऐसा आपको अत्यन्त आनन्द आयेगा जैसा केवल मेरे रहने से नहीं, दाल भात का जोड़ा ठीक ही है किन्तु उसके साथ गरम-गरम शुद्ध काली गाय का घी, निम्बू, पापर, चटनी आदि हो तो भोजन के स्वारस्य में परिवृद्धि हो जाती है।"

"मैं तो भूख की तड़पन से आकुल-व्याकुल होकर भी, भोजन की विविध पाक-प्रक्रिया में कुशल अपनी प्रियतमा के बुलाने पर रसोई घर पहुँचने की वाट जोह रहा था। क्या करूँ? राजकुमार जैसा पाठ पढ़ना आवश्यक था अन्यथा गरीबों, भूखमरों की भाँति भोजन मिल जाय, दाता की जय हो, कहता हुआ चला आता।"

(चित्तापहारी चितवनि और मन्द मुसकान के साथ)...... .. ...

"तो क्या रसोईघर से आपको कोई आमन्त्रण देने गया था? जब बिना बुलाये ही आना था तो प्रथम ही आ जाते किंचित भोग्य प्रतीक्षा करनी पड़ती तो कर लेते, इसमें क्या हानि थी आपकी? मुझे अपने आत्माधार के दर्शन तो हो जाते।"

"राजकुमार बिना बुलाये नहीं आया, प्रिये! उसके श्री गुरुदेव को आमन्त्रण गया था अतएव उसी निमन्त्रण को अपना समझकर गुरु-आज्ञा से वह आ गया।" मुसुकुराते हुये रसिकराय रघुनन्दन ने कहा।

'सच्छिष्यों का यही सत्कार्य है कि वह अमानी होकर, गुरु के धन, मान, प्रतिष्ठा, आवाहन को अपना समझकर, आचार्य सेवा में परायण बना रहे, भोजन पाने की आज्ञा तो अउलङ्घनीय है, किशोरी ने विनोद में कहा—बलिहारी है भूख की आतुरता को।"

"मधुलोभी मधुकर पंकज-पराग पीने के लिये, बिना बुलाये कमल के ऊपर जाकर मेड़राने लगता है, इसीलिये उसे रसिकों का गुरु माना है, प्रिया जू!"

ठीक है कहकर········ प्रिया-प्रियतम प्रेम के भुज पाश में बँध गये, कुछ क्षण में यथास्थिति आने पर·········"प्रियतम को अपनी प्रियतमा से विनिर्मित विविध प्रकार के रसान्न कैसे स्वादकर सिद्ध हुये?"

'इसके विषय में क्या पूँछना है? आपश्री से अविदित है क्या? ऐसा रसीला भोजन तो लगता है कि अन्यत्र अन्य जन्मों में भी अप्राप्य रहा। अपनी राजधानी अयोध्या में भी रसोई अच्छी बनती है किन्तु यहाँ के रसोई के सामने उसका पलरा बहुत हलका है, तभी तो आपश्री के प्रियतम को यहाँ से अन्यत्र जाने की इच्छा ही नहीं होती, जाये भी तो यहाँ के अन्न की स्मृति उसे दुर्बल बना देगी। अहो! क्या कहना है, यहाँ के रसानन्द की अनुभूति को। आनन्द! आनन्द···········!! आनन्द !!!"

"अच्छा अब आप श्री यह बतायें कि हमारे भैया-भाभी, मैया-दाऊ, एवं प्रेमी परिकर तथा परिजन-पुरजन, आपकी प्रतिष्ठा के अनुकूल मिले हैं या आपको संकोच मुद्रा में प्रतिष्ठित करने वाले ?"

"प्रियतमा के सभी पितु-पुर के स्वजनों को प्राप्त कर हम गौरवान्वित हो गये, प्रतिष्ठा के शिखर पर पहुँच गये । सच पूछिये तो आप व आपके स्वजनों के बिना हम अपूर्ण थे अभी तक, अब मिथिला के सम्बन्ध से हम और हमारी अयोध्या पूर्ण हो गई । मिथिला के पशु-पक्षी, भूरुह-लता, भूमि, वन, बाग-उपवन, सरिता सर, पाषाण-पर्वत आदि सभी स्वागत सा करते हुये, मुझे सुखी बनाने की चेष्टा-सी कर रहे हैं, धन्य है इन सबको, कि पुनः मिथिला पुरवासी नर-नारियों की कथा……। हमारे जैसे श्याल-सरहज, सास-श्वसुर तथा श्वसुरपुरी की प्राप्ति, लगता है कि ब्रह्मा-विष्णु-महेश को भी अप्राप्य रही, फिर अन्य देवों की चर्चा ही क्या ?"…कहकर वैदेही वल्लभ प्रेम विभोर हो गये ।

…… पुनः अहो ! अपनी सरहज सिद्धि कुँवरि और श्याल लक्ष्मी-निधि के अगाध प्रेम की थाह, अभी उनके प्रेमास्पद को भी अप्राप्त है । योगेश्वर याज्ञवल्क्य आचार्य—प्रसाद से कर्म, योग, ज्ञान और भक्ति के गूढ़तम रहस्य के ज्ञाता ही नहीं अपितु तदाकारिता से, प्रेम-पयस्वनी को प्रकट कर, संसार के सम्मुख लाने वाले, इन दोनों की कैंकर्य-कला, सर्वात्मसमर्पणत्व और काय-वैभव युक्त अन्य सभी भागवत धर्मों की साक्षात् सम्पत्तियाँ राम को आकर्षित कर, अन्यत्र उसके चित्त को चिन्तन करने का समय ही नहीं देती । राजशिरोमणि श्री मिथिलेश जी महाराज ब्रह्मविद वरिष्ठ हैं और ब्रह्मर्षियों के कमल-वन को अपने ज्ञान-सूर्य की किरणों से सदा विकसित किया करते हैं, जिनके चरणों के पाद-पीठ में, बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के मुकुट सटे ही रहते हैं, ऐसे महाराज मेरे श्वसुर हैं तथा सम्पूर्ण सुकृतों-सद्‌गुणों और सर्वश्रेष्ठ शरीर-सम्पत्तियों से युक्त जनक पाटमहिषी मेरी सासु हैं, राम का कितना गौरव वृद्धिगत हो गया, इनके सम्बन्ध से । अहह ! इनका वात्सल्य मुझ पर इतना है कि जितना उनकी प्राण-प्रियतरा पुत्री पर भी न रहा होगा । मैं तो आपके सम्बन्ध से, श्वसुर पुरी के स्वजनों को प्राप्त कर, लौकिक-पारलौकिक-भौतिक और आध्यात्मिक आनन्द में महान परिवृद्धि का लाभ अनन्त रूपेण प्राप्त कर लिया, कृतार्थ हो गया ।"

"प्राणेश्वर ये तो आपश्री के सहज संबंधी एवं परिकर हैं, आपके रहे, आपको प्राप्त हो गये, अस्तु आपश्री के मुख-विकास का हेतु होने से, ये सब धन्य हो गये। शेष, शेषी के काम में न आवे तो उसके शेषत्व का क्या प्रयोजन ? अतएव आपश्री को प्राप्त कर, हमारी मातृपुरी कृतार्थ हो गई।..............इस प्रकार प्रेमालाप करते-करते, युगल-किशोर शयन मुद्रा में स्थित हो गये।

श्री सिद्धि जी पतिमुख से ध्यानावस्था के दृश्य-दर्शन की कथा सुनकर भाव-निद्रा में सो गईं, पुनः जगकर कथा श्रवण करने की मुद्रा में स्थित हो गईं।

× × ×

२६

यज्ञ-कुञ्ज की अप्रतिम प्रतिभा आये हुये व्यक्ति को अध्यात्म-जगत में स्थिर कर, उसके सर्वशोक, मोह, दुःख, दोष, राग, द्वेष आदि भयावह भव रोगों को दमन करने वाली अनुभव में आ रही थी। वहाँ अनेक सिद्धों, राजर्षियों, व्रह्मर्षियों, मुनियों, योगियों, ज्ञानियों एवं भगवद्भक्ति परायण महापुरुषों के साधन काल और साध्य-सम्प्राप्ति-विषयक चारु चित्र बरबस साधन-प्रवृत्ति तथा साध्योपलब्धि की प्रेरणा देकर, परमार्थ के प्रशिक्षण कार्य में निरत से जान पड़ते थे। द्रव्य-यज्ञ, स्वाध्याय-यज्ञ, ज्ञान यज्ञ, ब्रह्म-यज्ञ, आत्म-यज्ञ, प्रेम-यज्ञ आदि की साधन सामग्रियाँ वहाँ समुपलब्ध थीं, कुंज सहज ही चित्त का निरोध करने में सक्षम था क्यों कि वह निमिकुल के परम्परागत महाराजाओं को उपर्युक्त यज्ञों के अनुष्ठान एवं मुख्यतः आचार्य प्रसाद से अपरोक्ष ब्रह्म ज्ञान-प्राप्त कराने वाला परम पावन स्थल था। तीर्थों को तीर्थत्व प्रदान करने वाले एवं अपने आत्मा में रमण करने वाले राम, अपने श्याल के साथ, उस उपरोक्त कुंज में पहुँचकर, वहाँ बिछे हुये साधनानुकूल आसनों में पृथक्-पृथक् सिद्धासन लगाकर बैठ गये तदनंतर अपने आप ध्यान- बृत्ति होने लगी। किंचित काल ही में दोनों के अन्तकरण चिद्घन स्वरूप में विलीन हो गये, पुनः चित्रों के दर्शन से समुत्पन्न चित्रात्माओं के दर्शन करने की कामना जो प्रथम चित्त- पटल पर उदित हो गई थी, उन महापुरुषों का साक्षात् दर्शन चिदाकाश में दोनों को होने लगा। भाम को स्वभावानुसार और श्याल को स्वभावानुसार ऋषियों, मुनियों, ज्ञानियों, योगियों और भक्तों का दर्शन, स्पर्श, कृपा एवं स्नेह प्राप्त

हुआ तत्पश्चात् निमि-वंश प्रसूत सभी महाराजाओं का दर्शन, स्पर्श, कृपा और परम वात्सल्य से भरा पूर्ण प्यार तथा आशीर्वाद युगल कुमारों को संप्राप्त हुआ। सभी लोगों ने, उन दोनों को अपने-अपने अंक में लेकर सर्वस्व प्राप्ति की-सी समनुभूति करके, राम के रामत्व का अर्थात् परम कारण स्वरूप परब्रह्म के निर्गुण-सगुण, निराकार-साकार स्वरूप की महिमा का वर्णन किया। राम के श्याल को राम का अभिन्न आह्लाद स्वरूप बताकर, पुनः सम्बन्धानुसार दोनों को निमिकुल-वंश उजागर कहकर परम प्यार किया। कुमार द्वय उनकी चरण वन्दना करके तथा उनका अमोघ आशीर्वाद प्राप्त करके अपने को कृतार्थ समझे।

तत्पश्चात् उक्त दृश्य के अदर्शन की बेला में रघुकुल किशोर के चिदाकाश में उनके श्याल स्वरूप का और निमिकुल किशोर के चिदाकाश में राम स्वरूप का दर्शन होने लगा। दोनों परमैकान्तिक सुख की समनुभूति विविध प्रक्रिया से कर-करके विभोर हो जाते, पुनः स्मृति के आसन में आसीन होकर, प्रेमासक्त प्रेमालाप करते, कुछ स्थैर्य की स्थिति आने पर ……"क्यों रघुनन्दन ! हम दोनों से यह कौन-सी अपने-आप चेष्टा हो रही है ?"

"निमिनन्दन ! यह प्रेम प्रक्रिया प्रेम से अभिन्न प्रेम—प्रदर्शिका है।"

"प्रेम तत्व वास्तव में क्या है ?"

"जैसे सुरभित सुमन की सुगन्ध, पुष्प के पराग का स्वरूपगत धर्म है, उसी प्रकार प्रेम आत्मा का स्वरूपगत धर्म है, जो आत्मा से अभिन्न है।"

"अन्तःकरण विहीन आत्मा में विभिन्न प्रकार की प्रेम-प्रक्रिया का दर्शन कैसे संभव है ?

"जैसे इत्र से अपने-आप सुगन्ध का प्रसार एवं पवन में स्पन्दन होता है, उसी प्रकार आत्मा में अपने-आप प्रेम का प्रकाश होता रहता है।"

"तो उस आत्म-प्रेम का प्रतिसम्बन्धी कौन है ?"

"आत्मा और परमात्मा परस्पर प्रेमी और प्रेमास्पद के स्वरूप में प्रेम-प्रक्रिया का अनुभव करते हैं।"

"प्रेम का प्रभाव क्या है ?"

"पत्थर और वज्र को भी पिघलाकर आत्मसात कर लेता है तथा दो हृदय को एक हृदय कर देना अपने-आप प्रेम का प्रत्यक्ष प्रभाव है।"

"प्रेम में किसी शक्ति का भी समावेश है ?"

"परमात्मा की सारी शक्ति प्रेम में निहित है क्यों कि प्रेम और परमात्मा एक ही हैं।

"परब्रह्म परमात्मा जगत का उपादान कारण जैसे है, वैसे ही प्रेम को उपादान कारण कैसे कह सकते हैं ?"

"परमात्मा से अभिन्न अव्यक्त प्रेम ने ही 'एकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत' के रूप में प्रथम परमात्मा को आन्दोलित किया अर्थात् प्रेम स्वरूप परमात्मा को प्रेम के आदान-प्रदान के लिये प्रेरित किया, तत्पश्चात् वह परब्रह्म पुरुषोत्तम 'एकोऽहं बहुस्याम' का संकल्प करके स्वयं जगत रूप में दृष्टिगोचर होने लगा अतएव सिद्ध हुआ कि परमात्मा का स्वरूपगत धर्म प्रेम, जगत का कारण है। इसी प्रकार सृष्टि पालन और संहार में भी प्रेम शक्ति के चमत्कार का दर्शन करना चाहिए। प्रेम के बिना कोई जीव जी नहीं सकते, प्रेम बिना किसी प्रकार की चेष्टा किसी जीव से संभव नहीं है।"

"तो क्या संसार की आसक्ति एवं पापादि की चेष्टायें भी प्रेमोत्पन्ना ही हैं ?"

"अवश्य, सबके मूल में प्रेम ही कारण है, जैसे बिगड़े फटे दूध का मूल, शुद्ध दूध ही है, उसी प्रकार प्रेम के बिगड़े हुये स्वरूप भूत राग का मूल प्रेम है।"

"विशुद्ध प्रेम, राग एवं आसक्ति के रूप में क्यों हो गया ?"

"जैसे मनुष्यों की असावधानी या खट्टे पदार्थों के संयोग से दूध में विकृति आ जाती है।"

"यदि प्रेम तत्व परिवर्तनशील मानते हैं तो परमात्मा से अभिन्न उसका स्वरूप कैसे सिद्ध होगा ?"

"दूध के दृष्टान्त के सर्व अङ्ग नहीं लेना चाहिये, प्रेम तो अपने स्वरूप में स्वयं स्थित है, किन्तु प्रेम को राग रूप में मानना वैसे ही है, जैसे परब्रह्म परमात्मा के अवतार को परमात्मा न मानकर मनुष्यवत व्यवहार में लाना यथा शिशुपाल-दुर्योधन आदि भगवान कृष्ण को कितनी खरी-खोटी

सुनाकर स्वयं परमात्म-लाभ से वंचित हो गये किन्तु परमात्मा में न परिणाम हुआ न एकरसता में कोई दोष आया। उसी प्रकार प्रेम को राग रूप में देखने वाले, प्रेम सुख से वंचित होकर, राग जनित क्लेश के शिकार बन जाते हैं।''

''प्रेम का सही उपयोग क्या है ?''

''प्रेम का उपयोग प्रेम के लिये, परमात्म-प्रसाद एवं उनकी प्राप्ति के लिये है।''

''परमात्मा क्या अन्य साधनों से नहीं प्राप्त होता ?''

'प्रेमातिरिक्त साधनों के द्वारा परमात्मा की उपलब्धि असम्भव है।''

''अन्य साधनों की महिमा का वर्णन शास्त्रों में क्यों किया गया है ?''

'साधन, साधनाभिमान छुड़ाने एवं प्रेम के योग्य भूमिका बनाने के लिये है।''

''प्रेमी और प्रेमास्पद का स्वरूप कैसा होता है ?''

''जैसे हम दोनों श्याल-भाम का स्वरूप।''

''प्रेम से प्रेमास्पद का दर्शन सुलभ हो जाने पर प्रेम क्या समाप्त हो जाता है, जैसे पेट भर जाने से भूख समाप्त हो जाती है ?''

'प्रेम में यही वैलक्षण्य है, वह प्रेमास्पद के मिलने पर भी उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है, जैसे लोभी को धन, विषयी को विषय प्राप्त हो जाने पर लोभ और विषय की परिवृद्धि होती जाती है।''

इस प्रकार श्याल-भाम परस्पर के ध्यान से तदाकार वृत्ति में प्रेम वार्ता कर-करके प्रेम प्रकाश से पूर्ण हो रहे थे। कुछ काल के पश्चात् प्रकृति प्रदेश में पहुँचकर, एक-दूसरे की ओर स्नेह भरी दृष्टि से देखने लगे, पुनः आश्चर्यचकित निमिकुमार ने कहा कि यह क्या ? आपके श्याल का शरीर श्याम और हमारे भाम की काया गौर क्यों दृष्टिपथ में आ रही है ?''

''आपके राम का जो ध्यान करता है, राम उसी के ध्यान में मग्न हो जाता है, यह उसका स्वभाव है अतएव गौर वपु के ध्यान की घनता से

श्याम वपु गौर प्रतीत होने लगा, श्याम वपु के प्रगाढ़ ध्यान से गौर वपु, श्याम के रूप में परिवर्तित हो गया है; अब अपने-अपनेपन के ज्ञान से क्रमशः दोनों का शरीर स्व-स्व के रंग में शीघ्र रंगता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है।

...... तदनन्तर 'भृङ्गी-कीट-न्याय' से प्राप्त शरीर दोनों के अपने-अपने सहज वर्ण में व्यवस्थित हो गये। दोनों प्रेम देव की महिमा से महिमान्वित प्रेम में भरकर परस्पर हृदयालिङ्गन आदि क्रिया करने लगे।

इस प्रकार सीताग्रज, सीताकान्त-विषयक प्रेम-गाथा सुनाकर, पुनः अपनी प्राणवल्लभा के अनुरोध से अन्य कथा श्रवण कराने के लिये चिन्तन करने लगे। श्री सिद्धि-कुंवरि जी कथा श्रवण करने की मुद्रा में स्थित हो गईं,

"धन्य है! राम-कथा रस के रसिक इन युगल दम्पति को।"—इस गगन ध्वनि ने कर्ण का विषय बनकर, श्रोता-वक्ता को प्रेम-परिप्लुत कर दिया।

× × ×

२७

मिथिला आज जगदेक सुन्दरी नवल नायिका के समान नख शिखान्त वस्त्राभूषण-भूषिता सर्वभावेन भव्यातिभव्य प्रतीत हो रही है। ध्वज, पताका, केतु, बन्दनवार, मणि-चौके, सदीप कनक-कलश पुरी के प्रत्येक भवनों की शोभा परिवर्धित कर रहे हैं। देवालयों को सजाकर देवों का मार्जन, पूजन-भेंट-समर्पण शास्त्ररीत्या बड़े धूम-धाम से किया जा रहा है। राज-मार्गों-चौराहों और बीथियों को सजाकर, उनमें इतर और पुष्पों का छिड़काव किया गया है। बन्दी-विरुद, विप्र-वेद, वादक-वाद्य, मङ्गल सूत्रा पौराङ्गनाये मधुमय मङ्गल गान और अन्य सब लोग जय-जय उच्च स्वर से उच्चारण कर रहे हैं, ब्राह्मण-समुदाय दान-मान से परिपूजित हो रहा है एवं आकाश भी भूमि के स्वर में स्वर मिलाता हुआ-सा प्रतिभावान हो रहा है, सभी परिजन-पुरजन नर-नारी सिर स्नात, चन्दन चर्चित वदन, नव-नव वस्त्राभूषणों से अलङ्कृत अधिकोल्लसित प्रतिभासित हो रहे हैं। सभी नर-नारियों के मुखचन्द्र सुधा-पूर्ण किरणों से प्रकाशित अमृत की वर्षा-सी कर रहे हैं, देव कोटि के सभी नर-नारियों को इनकी छाया के सदृश कहने में भी संकोच का परिरम्भण करना पड़ता है।

अहो ! महाराज मिथि की बसाई मिथिला नगरी का चमत्कार पूर्ण स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ, नहीं……नहीं……स्वप्न नहीं है, मैं आलस्य-हीन हूँ, जाग्रत अवस्था का यथार्थ ज्ञान है, संशयास्पद नहीं ।

"सखे ! आज आपकी निमि नगरी में किसी महामहोत्सव का आयोजन है क्या ?"

"अवश्यमेव ! आपकी इस श्वसुर-पुरी में अमल आनन्द प्रदायक उत्सव का आयोजन किया गया है, प्राणप्रिय सखे !"

"आयोजन की प्रधान तिथि आज ही है, क्या ?"

"हाँ ! आज ही महोत्सव की मुख्य तिथि है, श्यामसुन्दर ।"

"आज प्रथम इस उत्सव का प्रारम्भ है कि पूर्व से होता चला आ रहा है ?"

"यह मिथिला का वार्षिक उत्सव कई वर्षों से भवदीय अनुकम्पया होता चला आ रहा है ।"

"किस उपलक्ष में उत्सव का श्रीगणेश हुआ था, सखे ।"

"मिथिला के भाग्य-वैभव का सूर्य आज ही इस तिरभुक्त देश की निमि नगरी में आकाश से उतरकर, भूपति-भवन का आतिथ्य ग्रहण किया था ।"

"अच्छा……! समझ गया, आज आपकी भाग्य-विभूति विस्तारिका भगिनि भूमिजा से सम्बन्धित सर्व-प्रिय महोत्सव है ।"

"नहीं…… नहीं, भूमिजा तो हम मिथिलापुरवासियों के भाग्य-वैभव के भानु को प्रकाश पुंज प्रदान करने वाली भानु-प्रभा हैं, या यों कहिये कि वे मिथिला के भाग्य-वैभव की विधाता हैं ।"

"सखे ! आप पहेली-सी पढ़ा रहे हैं, मुझे । स्पष्ट बताइये कि किस उपलक्ष्य को लेकर, आज का महा-महोत्सव है ?"

"चक्रवर्ती कुमार ! आज की तिथि में ही हमारी मिथिला के सर्वस्व प्राणातिथि श्री राम रघुनन्दन का पदार्पण, भू-पति शब्द के शब्दार्थ भूमि के सच्चे पति भूमिजा के पिताश्री की भव्य भूमि एवं उनके भव्य भवन में हुआ था, अस्तु, अपने भाग्योत्कर्ष के कारण स्वरूप उनके प्रथम दर्शन की शुभ बेला की स्मारिका तिथि का महोत्सव अन्य वार्षिक उत्सवों से सर्व-श्रेष्ठ सर्व मैथिलों को परम प्रिय है ।"

"......तो आप अपने आत्मसखा राम से प्रथम मिलने की तिथि का महोत्सव मना रहे हैं। अहह ! राम के प्रति मिथिलापुरवासियों की अनन्य प्रीति ने राम को उनका ऋणी बना दिया है।"—साश्रु अवधेश कुमार ने कहा।

"मैथिलों के सर्वस्व ! श्री राम ने मिथिलावासियों को अपना सर्वस्व देकर, उनके सर्वस्व उसी प्रकार हो गये हैं, जैसे कोई सर्व-समर्थ राजा स्व के सहित अपने सर्वस्व को किसी साधनहीन भूखे दरिद्र को समर्पण कर दरिद्र का सर्वस्व धन हो जाता है, अस्तु, कृतज्ञता ज्ञापन के लिये यथार्थतः शब्द-कोश में कोई शब्द नहीं जो शब्द जन को अकारण अपना सर्वस्व देकर भी, उसके आधीन होने वाले और ऊपर से अपने को ऋणियाँ बताने वाले महापुरुष की यथार्थ कृतज्ञता प्रकट करने के लिये पर्याप्त हों। रामश्री के समान, रामश्री ही हैं, जय हो हमारे सर्वस्व मैथिली जन वल्लभ जू की।"

"क्या आपके सखा सर्वस्व को भी आज के महामहोत्सव के दर्शन-जनित आनन्द की अनुभूति का सुअवसर प्राप्त होगा ?"

"आनन्द सिन्धु का अद्योत्सवीय आनन्द के एक चुल्लू जल से तर्पण किया जायेगा। राघव ! पूर्वभूत उत्सवों में रामश्री के चमत्कारपूर्ण चारु चित्र द्वारा उत्सव मनाया जाता था। वर्तमान—वर्षे सर्वेषाम् सर्वाङ्गिणा भाग्योदयेण रामश्री साक्षात् मिथिला मही में पधार कर, मिथिलावासियों के आनन्द का परिवर्धन करेंगे। जय हो जन-मन-रंजन, भव-भय भंजन राम रघुनन्दन की।"

"सखे ! देखें तो सही, सामने से श्री श्रीधर कुँवरि अपनी सखी सहेलियों के साथ मंगल गीत गाती हुईं, अपने पति परमेश्वर के इस कक्ष की ओर आ रही हैं। अहा हा ! गज गामिनियों के मध्य गयन्द-गति सदृशी, राम-श्याल-वल्लभा, नक्षत्रावलियों के मध्य चन्द्र-प्रभा का तिरस्कार-सी कर रही हैं। कोकिल कंठ से गाया हुआ मधुर-गीत मधुर-मधुर वाद्य ध्वनि एवं पद-विन्यास प्रभव नूपुरों की झनकार के साथ, कितना श्रवण सुखदायी प्रतीत हो रहा है। अहो ! देव-दुर्लभा ऐसी श्याल-वधू को प्राप्त कर, राम का शिर कितना समुन्नतशील हो गया है। युगल-कुल-प्रदीपिका, शील-सुषमा-सीमिका, जगदेक सुन्दरी, कल्याण गुण-गण आगरी, प्रेम कोश कारिका, संग सखिन तारिका, रति-मद-मर्दिनी, रसराज रंगिनी, कुमार को मातृ-

श्री कुँवर-कान्ता का सदा मंगल हो, सदा मंगल हो।"

'कार्यक्रम के अनुसार प्रतीति हो रही है कि श्री अम्बाजी की आज्ञा से उनकी पुत्र-वधू अपने सीताकान्त को उनके अभिषेकार्थ एवं ब्रह्मविद विप्रों द्वारा उनका मंगलानुशासन करा के हाथ में रक्षा-सूत्र बँधवाने के लिये उन्हें लेने आ रही हैं।" सीताग्रज ने कहा।

"अपनी श्याल वधू के नयनोत्सव रसिकेश्वर राम! आप श्री के पाद-पद्मों में अभिवन्दन करती हुई सम्पुटाञ्जली नत शिरा श्री सीता के भाभी की प्रार्थना है कि आप श्री उसकी सासु जी के निजी सदन में पधारने की कृपा अविलम्ब प्रार्थी ही के साथ करें, वहाँ आपश्री को अभिषेक स्नान एवं अन्य मांगलिक कार्य सम्पादन कराने के लिये अम्बाजी प्रतीक्षा में बैठी हैं, साथ ही आपश्री के पहुँचने के प्रथम, वहाँ कुछ कार्यों को सँभालने के लिये अपने प्रियतर पुत्र को अपने सास-श्वसुर देखने की इच्छा प्रकट किये हैं, अस्तु, आपश्री से प्रथम आपके आत्म सखा का अपने मातृ-भवन पहुँचना, आप ही की सेवा के लिये अनिवार्य कहा है अम्बाजी ने।"

"रघुनन्दन! तो यह प्रथम मातृ-पद-पद्मों में शिरसा जाकर प्रणाम करें अन्यथा जननी-जनक की आज्ञा भंग के दोष के कलंक का टीका लगने का भय है, जो आपकी प्रसन्नता प्राप्त करने का विशेष विरोधक है।"

"अवश्यमेव! सुनयनानन्दवर्धन मिथिलेश कुमार को मातृ-सदन अभी अभी पहुँचना चाहिये। उनका राम अपनी श्याल-वधू के साथ शीघ्र उनके पीछे-पीछे अविलम्ब आ रहा है।"

अपने भाम का. सस्नेह आलिंगन करके............"अच्छा! तो यह आपका श्याल आपश्री की सेवा के लिये जा रहा है, ठीक है न?

(सिद्धिजी की ओर संकेत करके)............अपने प्रिय वैदेही-वल्लभ को उत्सव के साथ शीघ्र वहाँ पहुँचने के प्रयत्न को नहीं भूलना चाहिये।"

"रसिकेश्वर! कुछ सेवा शेष हो तो उस कैंकर्य को करने के लिये आज्ञा हो अपनी सरहज को।"

"कुछ कैंकर्य शेष नहीं है, कुँवर-वल्लभे। बस, वस्त्र धारण कर आप के साथ अम्बाजी के दर्शनार्थ उनके भवन चलना ही शेष है।"

"लीजिये, इन वस्त्रों को धारण कर लें।"

"अच्छा! लीजिये, वस्त्र धारण कर लिये।"

"अब ये पादत्राण धारण करने की कृपा करें।"

(स्वयं सिद्धिजी अपने कर-कमलों से, श्री राम पद-पद्मों में ज्योतिर्मय जूतियों को धारण कराकर अविलम्ब चलने की प्रार्थना करती हैं।)

"उठकर ......लीजिये, आपका राम आपके साथ सहर्ष चला।"

[कोमलाति कोमल बिछे हुये मखमल के कामदार पाँवड़ों पर सुमन बिखेरती हुई, सिद्धि-सहेलियाँ अपने प्राण-प्रिय सीताकान्त को लिवाकर, सुनयना-सदन की ओर चलीं। नृत्य, गीत, वाद्य के साथ रघुनन्दन के शिर पर छत्र दिये एवं चमर डुराती हुई नवेलियाँ, नवल किशोर को लिये ज्यों ही माँ के महल में पहुँचती हैं त्यों ही सासु सुनयना को आरती उतारने के पश्चात् प्रणाम करके.........]

'अम्बा जी! आपकी नगरी में प्रथम प्रथम पहुँचते ही मेरी आर्ति-दशा का पता ही न चला न जाने वह कहाँ उतर कर चली गई, तब से उसने मुख फेर मुझे नहीं देखा। अब तो आनन्द! आनन्द!! फिर भी आपश्री अपने वात्सल्य के आधिक्य से मेरी बार-बार आरती उतारती हैं। अहह! कितना प्यार! कितना वात्सल्य! कितना स्नेह! कोई सीमाङ्कन नहीं कर सकता।"

"हृदय से लगाकर—मेरे लाड़िले लाल! आपश्री ने स्वयं मिथिला-वासियों की आर्ति को हरण करके, अपने आर्ति हरण नाम के अर्थ को प्रत्यक्ष त्रिभुवन के नेत्रों का विषय बनाया है किन्तु माधुर्य सुधा-सिन्धु में गोता लगाते रहने से, उस ऐश्वर्य सिन्धु को भूल जाती हूँ मैं, जिससे सुरों और असुरों द्वारा मन्थन क्रिया से चौदह रत्न निकलने पर दोनों दलों में मार-काट मच गई थी इसलिये मोह-वश सर्व रक्षक की रक्षिका बनकर, आरती उतारने, रक्षा-मन्त्र पढ़ने और मंगलानुशासन करने की क्रिया में प्रवृत्त हो जाती हूँ। जब हमारे जमाई राम की! जय हो हमारे प्रिय पाहुन राम रघुनन्दन की! जय हो हमारे मिथिला के सर्वस्व की!"

[पुनः स्वर्ण सिंहासन में बैठाकर राम को सविधि अभिषेक-स्नान पंचध्वनि के साथ ब्राह्मणों द्वारा कराया गया। श्री लक्ष्मीनिधि जी ने स्वयं अपने हाथ से मिथिला के बने वस्त्राभूषणों से अपने हृदय बिहारी भाम को नख शिखान्त आभूषित किया। श्री विदेहराज जी ने बहुमूल्य मणियों का माल्य एवं सुन्दर सुगन्धित वैजयन्ती माला समर्पण कर जानकीबल्लभ का शिर सूंघा और अपने अनेक अमोघ आशीर्वादों से राम का सम्मान किया, मंगलानुशासन एवं रक्षामन्त्र पढ़कर ब्राह्मणों ने रघुनन्दन के कर-कमलों में

सदन अभी-अभी पहुँचना चाहिये। उनका राम अपनी श्याल-वधू के साथ शीघ्र उनके पीछे-पीछे अविलम्ब आ रहा है।"

अपने भाम का सस्नेह आलिंगन करके····"अच्छा ! तो यह आपका श्याल आपश्री की सेवा के लिये जा रहा है, ठीक है न ?

(सिद्धि जी की ओर संकेत करके) -···अपने प्रिय वैदेही-वल्लभ को उत्सव के साथ शीघ्र वहाँ पहुँचने के प्रयत्न को नहीं भूलना चाहिये।"

"रसिकेश्वर ! कुछ सेवा शेष हो तो उस कैंकर्य को करने के लिये आज्ञा हो अपनी सरहज को।"

"कुछ कैङ्कर्य शेष नहीं है, कुँवर-वल्लभे ! बस, वस्त्र धारणकर आपके साथ अम्बा जी के दर्शनार्थ, उनके भवन चलना ही शेष है।"

"लीजिये, इन वस्त्रों को धारण कर लें।"

"अच्छा ! लीजिये, वस्त्र धारण कर लिये।"

"अब ये पदत्राण धारण करने की कृपा करें।"

(स्वयं सिद्धि जी अपने कर-कमलों से श्री राम पद-पद्मों में ज्योतिर्मय जूतियों को धारण कराकर अविलम्ब चलने की प्रार्थना करती हैं।)

"उठकर··· - लीजिये आपका राम आपके साथ सहर्ष चला।

[कोमलाति कोमल बिछे हुये मखमल के कामदार पाँवड़ों पर सुमन बिखेरती हुई सिद्धि-सहेलियाँ अपने प्राण-प्रिय सीताकान्त को लिवाकर, सुनयना सदन की ओर चलीं। नृत्य, गीत, वाद्य के साथ रघुनन्दन के सिर पर क्षत्र दिये एवं चमर दुराती हुई नवे श्री कुंवर-कान्ता का सदा मंगल हो, सदा मंगल हो।"

"कार्यक्रम के अनुसार प्रतीति हो रही है कि श्री अम्बा जी की आज्ञा से उनकी पुत्र-वधू अपने सीताकान्त को उनके अभिषेकार्थ एवं ब्रह्मविद विप्रों द्वारा उनका मंगलानुशासन करा के हाथ में रक्षा-सूत्र बँधवाने के लिये उन्हें लेने आ रही हैं।"—सीताग्रज ने कहा।

"अपनी श्याल-वधू के नयनोत्सव रसिकेश्वर राम ! आप श्री के पाद-पद्मों में अभिवन्दन करती हुई सम्पुटाञ्जली, नत शिरा श्री सीता के भाभी की प्रार्थना है कि आपश्री उसकी सासु जी के निजी सदन में पधारने की कृपा अविलम्ब प्रार्थी ही के साथ करें, वहाँ आपश्री को अभिषेक स्नान एवं अन्य मांगलिक कार्य संपादन कराने के लिये अम्बाजी प्रतीक्षा में बैठी हैं, साथ ही आपश्री के पहुँचने के प्रथम, वहाँ कुछ कार्यों को संभालने के लिये अपने प्रियतर पुत्र को अपने सास-श्वसुर देखने की इच्छा प्रकट किये

हैं, अस्तु, आपश्री से प्रथम आप के आतम सखा का अपने मातृ-भवन पहुँचना, आप ही की सेवा के लिये अनिवार्य कहा है अम्बा जी ने।"

"रघुनन्दन ! तो यह प्रथम मातृ-पद-पद्मों में शिरसा जाकर प्रमाण करे अन्यथा जननी-जनक की आज्ञा भंग के दोष के कलंक का टीका लगने का भय है, जो आपकी प्रसन्नता प्राप्त करने का विशेष विरोधक है।"

'अवश्यमेव सुनयनानन्द वर्धन मिथिलेशलियाँ नवल किशोर को लिये ज्यों ही माँ के महल में पहुँचती हैं त्यों ही सासु सुनयना को आरती उतारने के पश्चात प्रमाण करके ·· ····]

'अम्बा जी ! आपकी नगरी में प्रथम-प्रथम पहुँचते ही मेरी आर्ति-दशा का पता ही न चला न जाने वह कहाँ उतर कर चली गई, तब से उसने मुख फेर मुझे नहीं देखा। अब तो आनन्द ! आनन्द !! फिर भी आपश्री अपने वात्सल्य के आधिक्य से मेरी बार-बार आरती उतारती हैं। अहह ! कितना प्यार ! कितना वात्सल्य ! कितना स्नेह ! कोई सीमाङ्कन नहीं कर सकता।"

"हृदय से लगाकर—मेरे लाड़िले लाल ! आपश्री ने स्वयं मिथिला-वासियों की आर्ति को हरण करके, अपने आर्ति हरण नाम के अर्थ को प्रत्यक्ष त्रिभुवन के नेत्रों का विषय बनाया है किन्तु माधुर्य सुधा-सिन्धु में गोता लगाते रहने से, उस ऐश्वर्य सिन्धु को भूल जाती हूँ मैं, जिससे सुरों और असुरों द्वारा मन्थन क्रिया से चौदह रत्न निकलने पर, दोनों दलों में मार-काट मच गई थी इसलिये मोह-वश सर्व रक्षक की रक्षिका बनकर, आरती उतारने, रक्षा-मन्त्र पढ़ने और मंगलानुशासन करने की क्रिया में प्रवृत्त हो जाती हूँ। जय हमारे जमाई राम की ! जय हो हमारे प्रिय पाहुन राम रघुनन्दन की ! जय हो हमारे मिथिला के सर्वस्व की !"

[पुनः स्वर्ण सिंहासन में बैठाकर राम को सविधि अभिषेक-स्नान पंचध्वनि के साथ ब्राह्मणों द्वारा कराया गया। श्री लक्ष्मीनिधि जी ने स्वयं अपने हाथ से मिथिला के बने वस्त्राभूषणों से, अपने हृदय बिहारी भाम को नख-शिखान्त आभूषित किया। श्री विदेहराज जी ने बहुमूल्य मणियों का माल्य एवं सुन्दर-सुगन्धित वैजयन्ती माला समर्पण कर जानकीवल्लभ का शिर सूंघा और अपने अनेक अमोघ आशीर्वादों से राम का सम्मान किया, मंगलानुशासन एवं रक्षामन्त्र पढ़कर ब्राह्मणों ने रघुनन्दन के कर-कमलों में

रक्षा-सूत्र बाँधा तदनन्तर पञ्चध्वनि के साथ, श्री विदेहराज नन्दिनी जू को लाकर, सखियों ने राम जी के साथ सुन्दर स्वर्ण सिंहासन में आसीन कर दिया तत्पश्चात् छत्र, चमर, विजन, छड़ी, दर्पण, इत्र-दान, पान-दान आदि मांगलिक सेवा साज लेकर सभी सखियाँ युगल किशोर-किशोरी की सेवा सप्रेम करने लगीं। पंच-ध्वनि होने लगी, आकाश से भी दुंदुभि बजाकर, प्रसून वर्षा प्रारम्भ हो गई, श्री सिद्धि कुँवरि जी ने अपनी सासु के साथ अपने ननँद ननदोई की आरती उतार कर, बहुत सी धनराशि न्योछावर की, तत्पश्चात् लाड़िली-लाल के हाथ से ब्राह्मणों को गो-पृथ्वी-रत्न-वस्त्र-अन्न-स्वर्णमुद्रा आदि भूरि-भूरि दक्षिणा श्री विदेहराज जी ने दिलवायी। परम सन्तोषी ब्राह्मणों का आशिर्वाद युगल किशोर-किशोरी को प्राप्त हुआ जान-कर, सपरिवार महाराज विदेह परम प्रसन्न हुये तदनन्तर विविध पक्वान्नों के द्वारा, ब्रह्मभोज कराकर, श्री राम जी सहित सभी राजपरिवार ने भगवत प्रसादान्न का भोजन किया।

विश्राम के समय सन्ध्या समय में सभी नागरिक, कुलगुरु, ब्राह्मण, राजा, राज-परिवार आदि प्रमुख जनों के साथ, राजसभा में जाकर अपने-अपने यथोचित आसनों में आसीन हो गये। निमिकुल के आधारभूत महर्षि याज्ञवल्क्य जी, कुल पुरोहित श्री शतानन्द जी अन्य ऋषियों के साथ सुन्दर सिंहासनों में सबके बीच ब्रह्म समान विराज रहे हैं। महाराज जनक राजो-चित आसन में अन्य राजाओं के बीच विराजित, इन्द्र की श्री का अपहरण कर रहे हैं। रघुकुल-भूषण राम एवं निमिकुल नन्दन लक्ष्मीनिधि अपने अनुजों, सखाओं के मध्य रत्नालङ्कृत स्वर्ण सिंहासनों में विराजित अपनी देहकान्ति से सभा को प्रकाशित कर रहे हैं। राजसभा साक्षात् ब्रह्म-सभा के समान सर्वभावेन प्रतीत हो रही है। राजीव लोचन राम अपने 'विश्वविलो-चन चोर' नाम को सार्थक कर रहे हैं। सभा की अतृप्त आँखे राम रसि-केश्वर के चन्द्रमुख की चकोर बनी हुई हैं, आनन्द-कन्द रघुनन्दन की उप-स्थिति से सभा में आनन्द की वर्षा हो रही है, सभी सच्चे सुख की समाधि में सो रहे हैं, आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

आज की तिथि में आचार्य-प्रसाद से अपनी मिथिला को, परम पुरु-षार्थ स्वरूप उस महान लाभ की प्राप्ति हुई, जिसके दर्शनमात्र से बड़े-बड़े ब्रह्मविद वरिष्ठ ब्रह्मस्वरूप ज्ञानियों को उसे अपना ज्ञेय समझने में विलम्ब न हुआ, भक्ति-पथ-अनुयायी जिसे अपना भगवान जाने, योगी लोग जिसे प्रकाशमय परमतत्व स्वरूप समझे, विदुषों को जो विराटरूप में प्रतिभासित

हुआ, जो असुरों को काल के समान, रणश्लाघियों को साक्षात् वीर-रस के सदृश, नारियों को साक्षात् शृंगार रस की अनुपम मूर्ति की भाँति, विदेह को सपत्नीक अपने जमाई की तरह तथा जनक जाति वालों को सगे स्वजन की भाँति और वैदेही को अपने सर्वस्व के समान ज्ञान हो गया था, जिसे चिरञ्जीव लक्ष्मीनिधि ने उसके साक्षात् मिलन से प्रथम स्वप्न में देखकर, अपने अनुजा पति के रूप में जाना था, जिसे आचार्य प्रवर एवं दीर्घदर्शी मुनि वेद-वेद्य कहकर, उसके साकार विग्रह में रीझ जाते हैं, जिसे देखते ही जनक जैसे सहज वैरागी का वैराग्य एवं ब्रह्मानन्द दोनों न जाने कहाँ चले गये थे, परम विशुद्ध प्रेम का साम्राज्य हृदय प्रदेश में छा गया था, उसी परम लाभ की स्मृति के उपलक्ष्य में आज का महोत्सव आचार्य श्री की अध्यक्षता में मनाया जा रहा है ।

"महाराज मिथिलेश्वर की जय हो, जय हो ! हम सबके नयनोत्सव का मूर्तिमान साक्षात् मुनि स्वरूप हम सबके समक्ष है । देखिये ·· सुर-नर-समुदाय समवेत स्वर से हमारे वाक्यों का समर्थन कर रहा है । यह सब आपश्री के परम सुकृत का फल है, जिसके रस का आस्वादन त्रिभुवन वासियों को कराने पर भी, वह पूर्णाति पूर्ण शेष है, आप व आपके परिवार के लिये । धन्य है हमारे मिथिलेश्वर के भाग्य वैभव को ।"

सभा की सर्वमुख विनिस्सृता वाणी के साथ आकाश से पुष्प वर्षा कर-करके जय ध्वनि सबके कर्णों का विषय बनी । मिथिलेश्वर ! श्वेताश्वतरोपनिषद प्रतिपादित जिस अनन्त ब्रह्माण्डकारिणी शक्ति का दर्शन ध्यान के आकाश में ऋषियों-मुनियों ने किया था, उस ब्रह्म-स्वरूपिणी शक्ति के जनक को, जन-मन-रञ्जन, भव-भय भञ्जन, योगियों के रमने के एकमात्र स्थान सच्चिदानन्द स्वरूप राम का दुर्लभ दर्शन सुलभ हो जाय, वह भी निमिकुल नरेश के वात्सल्य रस का आस्वादन करने की आतुरता से, उनके पुत्री का पाणिग्रहण करने के व्याज से आये हुये अपने आँगन में, तो इसमें कौन आश्चर्य है ?" श्री याज्ञवल्क्य जी ने कहा ।

"आध्यात्मिक जगत में जनक का प्रवेश एवं तल्लाभ की प्राप्ति-जनित आनन्द की अनुभूति, अपने आचार्य श्री की अकारण अनुकम्पा का साक्षात् प्रमाण है अन्यथा योगियों के परम प्राप्तव्य मुनि-मन-मानस-हंस, वेद-वेद्य मनसागोचर, निर्गुण-सगुण उभय विशेषणों से सदा समायुक्त सच्चिदानन्दात्मक अद्वय तत्व विशेष्य को अपने नेत्रों का विषय बनाना दुर्लभ ही नहीं, अपितु असाध्य था"·········कहकर वह, विदेह की स्थिति में

स्थित हो गये, किंचित काल में प्रकृतिस्थ होकर विदेह राज ने, श्री राम का अमल यश एवं विरुदावली, मंगलानुशासन, आशीर्वाद, विप्रों, बन्दियों, कथाकारों और भाँट-सूत-मागधों एवं नर्तक-नर्तकियों द्वारा संपादित होने के लिये आचार्यानुमति से कहा।

उपर्युक्त कृत्यों के यथाविधि होने के समय, श्यामसुन्दर जनक जामाता राम का नेत्रों से दर्शन, श्रवणों से उनके यश का श्रवण और मुख से उनके नाम का जय घोष कर-करके सारी सभा, हम कौन ? कहाँ हैं ? विस्मरण करके परमानन्द के सिन्धु में समाविष्ट हो गई। कुछ काल में स्मृति के आसन में बैठकर, रस रूप राम के मुखाम्भोज का पराग पीने के लिये, अपने रसिक नेत्र-भ्रमरों को वहाँ भेज दिया, मकरन्द पान में अतृप्त मधुकर मेड़रा-मेड़राकर गुंजन क्रिया करने लगे, उन्हें वहाँ से लौटकर सभा में आना असंभव सा लगने लगा।

"वत्स, रघुनन्दन ! सारी सभा के श्रवण आप श्री के मुख की कनक कलशी में भरे वचनामृत का पान करने के लिये लालायित हैं, अस्तु, अतृप्तों को संतृप्त करने की इच्छा, मुनि के मन में उदय हो गई।" याज्ञवल्क्य जी ने कहा।

उठकर, चक्रवर्ती कुमार ने प्रणयावनत करबद्ध कहा, "जहाँ आचार्य श्री जैसे योगिवर्य ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मविद वरिष्ठ विराजे हैं, जिनके प्रसाद से समस्त मैथिल नरेश आत्मविशारद, वेद विख्यात होते चले आ रहे हैं और विरति, विवेक के साकार मूर्ति राज-राजेश्वर मिथिलेश्वर जी महाराज उपस्थित हों, जिनके सहज स्वरूप में कर्म-ज्ञान-भक्ति एवं समस्त सद्गुणों का रहस्यार्थ आवास कर, अपने को धन्य समझता हो, ऐसे अपने ज्ञान-रवि की वाक्य रश्मियों से मुनियों के कमल-वन को विकसित करने वाले, ब्रह्म स्वरूप के आगे आपके अबोध बालक राम का कुछ कहना अपनी तोतरी वाणी से जननी-जनक आदि गुरुजनों को प्रसन्न करना है।"

वेद-विदित 'रसो वै सः' वाक्य वेद ब्रह्म का सार सिद्धान्त एवं वेद अगाध समुद्र में छिपा हुआ उसका सर्वस्व अनिर्वचनीय, अनुपम, असमोर्ध्व और अनमोल श्रेष्ठातिश्रेष्ठ रत्न है, जिसे प्राप्तकर ही या यों कहिये जिसमें स्थित होकर ही आत्मा व परमात्मा को अपने सहजानन्द की अनुभूति होनी संभव है अन्यथा असंप्रज्ञात निर्बीज समाधि की स्थिति का ही आलिंगन है अर्थात् केवलीभूत होने पर मैं-तुम, ब्रह्म-जीव, माया का कुछ भी ज्ञान न होकर शून्य की स्थिति में कौन किसका अनुभव करे, अस्तु,

'आनन्दं ब्रह्म' 'आनन्दमय ब्रह्म' 'सच्चिदानन्दं ब्रह्म' आदि वाक्यों की सिद्धि 'रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति' 'रस' रत्न पाने पर ही संभव है।

अहो! आचार्य प्रवर ने उस 'रस' रत्न को वेद के अगाध-सिन्धु से निकालकर, सपरिवार महाराज मिथिलेश को हृदय का हार बनाने के लिये समर्पित कर दिया है। आज उस रत्न के अनन्त वैभव का चमत्कार पूर्ण दर्शन समस्त विदेहपुरी में आपका राम कर रहा है, नगर-निवासी पुरजन-परिजन एवं सभी वर्ण व आश्रम के नर-नारी, गुरु प्रदत्त उस रस रत्न का उपभोग कर रहे हैं, जो देवताओं, ऋषियों, मुनियों व सिद्धों को भी अति दुर्लभ है, इतना ही नहीं पुरवासियों के प्रभाव से पुरी के पशु-पक्षी, लता-पादप, पत्थर आदि सभी रस लुब्धक से प्रतीत हो रहे हैं, इन सबका दर्शन-स्पर्शन कर, राम भी मिथिला में रमने योग्य हो गया। जय हो, जय हो, योगीराज याज्ञवल्क्य जी महाराज की ......।"

रसमय रसिकेश्वर रघुनन्दन राम की जय हो, जय हो .... शब्द ने एक साथ सभी सभासदों के मुख को मधुर बना दिया। आनन्द, आनन्द आनन्द, आनन्द, सब ओर आनन्द!

"अहो! यह आनन्द अपने आचार्य श्री की अहैतुकी कृपा एवं पूर्वजों के पुण्य प्रभाव व आशीर्वाद का पूर्ण फल है। अहा हा! आज यदि हमारे पूर्वज स्व पुण्यार्जित इस चमत्कार पूर्ण परमानन्द का दर्शन करते तो .. आज कितने अप्रमेय आनन्द की अनुभूति होती उन्हें। आज उन सबका भली-भाँति संतर्पण हो जाता।" कहते हुये महाराज मिथिलेश साश्रु हो गये।

"श्री विदेहराज जी! यदि आपके पूर्वज अपनी ब्रह्म विद्या के प्रभाव से, अपुनरावर्ती परमधाम को न प्राप्त हुये होते तो अब तक स्वर्गस्थ देव-ताओं के समान, स्वकुलोत्पन्ना वैदेही एवं तत्सम्बन्धी महोत्सवों का दर्शन, करके महान लाभ से वंचित न रहते वे, फिर भी आप जैसे भूमिजा के पिता का उक्त मनोरथ असफल नहीं होना चाहिये, कामना आचार्य की है। अच्छा! सभी सभास्थ सज्जन मिलित नेत्र, चित्त को चिदाकाश में स्थिर करें।"

महाराज याज्ञवल्क्य जी की आज्ञा का अनुवर्तन शीघ्र सभी लोगों ने किया। चित्त स्थिर होते ही, सभी के चिदाकाश में श्री राम रघुनन्दन के दर्शन से परम आह्लादित पूर्वभूति निमिकुल नरेशों का दर्शन होने लगा, सभी पूर्वज रघुवंश विभूषण का दर्शन कर अपने को कृतार्थ समझे।

"अहो ! मेरे पौत्री-पति राम ! आपका मंगल हो ! अपनी अक्षय कीर्ति के विस्तार से, भव-ग्रस्त जीवों के कल्याण करने में सर्वभावेन समर्थ हो।" श्री ह्रस्वरोमा जी महाराज ने गद्गद् वाणी में कहा।

"यह राम अपने श्वसुर देव के पिता श्री को बार-बार प्रणाम करता है। परम पद स्वरूप आप श्री की कृपा व आशीर्वाद बना रहे, जिससे राम का रामत्व सुरक्षित रहे।"

श्री ह्रस्वरोमा जी हृदय में लेकर वात्सल्य रस से भर जाते हैं। तदनन्तर ...

"अहो ! मेरे प्रपौत्री-पति रसिकेश्वर राम ! आप श्री के नाम का स्मरण कर लोग संसार सागर का सहज ही सन्तरण कर लेंगे किं पुनः आप श्री के सम्बन्धियों की वार्ता ··· ·· ·· ·· ! आपका मंगल हो, मंगल ही, मंगल हो !"

"यह दाशरथि राम, निमिवंशावतंस श्री स्वर्णरोमा जी महाराज के चरणों में बार-बार नमन करता है।"

हृदय में लेकर महाराज ने कहा—"राम ! हमारे कुल के गौरव बढ़ाने वाले आप श्री सीताकान्त का गौरव अखण्ड युग-युग प्रतिष्ठित रहे। जय हो, जय हो, राम रघुनन्दन की।"

"अहो ! दशरथनन्दन राम ! आप जितने वत्स श्री सीरध्वज व लक्ष्मीनिधि को प्यारे हैं, वैसे ही हम सब उनके पुर्वजों को प्यारे हैं, आप श्री को प्राप्तकर, हमारा निमिवंश धन्यातिधन्य हो गया। हे सीता वल्लभ ! आप दोनों वही हैं, जिसमें योगिवर्य एवं हम निमिवंश के पूर्वज सदा स्थित रहे हैं। आपकी जय हो, जय हो।" महाराज महारोमा जी ने कहा।

"आप श्री के पद-पद्मों में राम बार-बार प्रमाण कर आपका आशीर्वाद चाहता है।"

हृदय में लेकर महाराज ने कहा—"राम ! तुम्हारे रूप की स्मृति जगज्जीवों को जगत से मुक्त करने वाली सिद्ध हो। संसार के सभी नेत्र-वन्तों के नेत्रोत्सव बने रहो। आनन्द !! आनन्द !! आनन्द !!

इस प्रकार सभी निमिकुल के पूर्व नरेशों ने श्री राम के दिव्य दर्शानानन्द की अनुभूति करके परम प्रसन्नता के साथ, अपनी मंगल कामना से श्री राम का पूजन किया। सभा में उपस्थित सर्व सज्जनों के चिदाकाश में उक्त दृश्य उदय होकर, सभी के अन्तर चक्षुओं का विषय बना। दृश्य के अदृश्य

हो जाने पर, योगिवर्य के संकल्प से सभी लोग प्रकृतिस्थ होकर, श्री राम के चन्द्रमुख के चकोर बन गये।

'आचार्य श्री के चरणों में दण्डवत के अतिरिक्त आचार्य प्रसन्नता के लिये, जनक के पास अपना है ही क्या ? आज अपने पूर्वजों की प्रसन्नता जो उन्हें श्री राम के दिव्य-दर्शन से प्राप्त हुई थी, देखकर सीरध्वज कृतार्थ हो गया, परिवार सहित अपने ऊपर उनकी कृपा, प्रसन्नता और आशीष-दृष्टि देखकर कृतकृत्य हो गया।''

श्री भूमि नन्दिनी के पिता एवं श्री राम के श्वसुर को लोक-परलोक की कोई वस्तु अलभ्य न है न रहेगी। आचार्य श्री ने कहा।

श्री राम व लक्ष्मीनिधि भी निमिकुल के पूर्व नरेशों का दर्शन व आशीर्वाद पाकर अपने को कृतकृत्य समझे तथा आश्चर्यचकित परमपद प्राप्त पित्रों के दर्शन-सम्बन्धी वार्ताओं का विनियोग परस्पर कर-करके आनंद की अनुभूति करने लगे। सभासदों को श्री याज्ञवल्क्य जी द्वारा समाधानप्राप्त हुआ। अंत में उत्सव प्रक्रियाओं के साथ सभा का विसर्जन हुआ।

इस कथा के प्रसंग में आप से कुछ अविदिता वार्त्ताओं को आपके श्रवणों तक पहुँचा दिया, शेष बातें आपकी जानकारी की है। इस प्रकार श्री लक्ष्मीनिधि वल्लभा, अपने प्राणेश्वर की श्री मुख वाणी को श्रवणकर, पुनः अतृप्त-सी कथा-श्रवण की मुद्रा में स्थित हो गईं।

× × ×

२८

"आपश्री का पदार्पण मिथिला की पावन भूमि में जब से हुआ, तब से आज तक की, आप समेत आपकी चरित-चन्द्रिका के चारुतम चित्र, चित्त के भीति पर ही नहीं अपितु चित्र के रूप में चित्रशाला की शोभा का भी परिवर्धन कर रहे हैं। आपश्री की अनुपस्थिति में चित्राङ्कित अपने राम व उनकी लीलाओं के दर्शन-जल के छींटे दे-देकर, विरह-वह्नि को कुछ शान्त करने के लिये हमारे पिताश्री, माताश्री एवं आपके श्याल-सरहज तथा अन्य सभी परिवार के लोग, चित्र शाला में समय-समय पर पहुँचा करते हैं। चित्रों की चित्रण शैली बड़ी ही मनोरम है कभी-कभी चित्राङ्कित चरित्रों की चेष्टायें, चित्त में चढ़कर, अतीत काल को वर्तमान में स्थित कर देती हैं अर्थात् वियोग दशा को विलीन कर, योग दशा के अनुभव तथा तज्जनित आनन्द में द्रष्टा को संलग्न करना, उनका सहज व्यापार हो जाता है।"

"अहो! आज तक चित्रसारी के चित्रों का चमत्कृत चित्रण, आप अपने आत्म सखा से छिपाये ही रहे, क्यों?"

"नहीं⋯⋯नहीं छिपाये नहीं रहा, सूर्य के प्रकाश से नक्षत्रों का दर्शन न होने के सदृश, भानुकुल भानु का मिथिला के आकाश में उदित होना ही, चित्रों की नक्षत्रावली को अस्त-सा कर देने में कारण है। सूर्य यदि किसी से कहे कि नक्षत्रों को हमसे छिपा क्यों लिये, कहाँ तक युक्ति-संगत है? अमावस की अंधियारी रैन में बेचारे नक्षत्र ही वन में भटकने वाले के काम जैसे आते हैं, वैसे ही विरह-वन की वेदना की अँधेरी में, प्रिय के चित्र-नक्षत्रों का प्रकाश ही विरही जीवों का सहारा होता है।" निमिकुल कुमार ने कहा।

"अहो! मिथिला के मेहमान का मानस-पटल, चित्र-शाला की चित्रावली के चमत्कारपूर्ण दर्शन की चाह से चित्रित हो गया, अतएव वह वहाँ के चारुतम चित्रों का दर्शन अतृप्त चक्षुओं को कराकर, मानस-भीति पर अंकित कामना के चित्र के स्थान पर, चित्रसारी के सारे चित्रों को चित्रण करना चाहता है। मिथिलेश कुमार की अनुमति ही, इस आवश्यक कार्य की सम्पादिका है। मेहमान के मनीराम मचल रहे हैं, अपने मनोरथ की आतुरता से अस्तु, अतिथि का आतिथ्य होना अति आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है, लक्ष्मीनिधि-निकुंज में।"

"जिस अपने से अभिन्न आत्म सखा को, अपना सर्वस्व समर्पित हो गया है, उसका अधिकार बाह्याभ्यन्तर सर्वभावेन स्वयं सिद्ध है। वह जब, जिस समय, जहाँ, जिस वस्तु को यथारुचि विनियोग करने में सर्वथा स्वतंत्र है, जैसे शेषी शेष का, भोक्ता भोग्य का, रक्षक-रक्ष्य का। कहिये किस समय चित्रशाला में चलने की इच्छा है प्राणातिथि-चितचोर चूड़ामणि के मन में। हाँ! वहाँ चलकर चित्रों के चित्त को चुराने में अपनी चौर-पटुता का प्रदर्शन, मैथिलों के हितार्थ चोर पटु को नहीं करना चाहिए अन्यथा विरहिनी मिथिला बिना चित्त के चित्रों को देखकर, अपने विरहाग्नि को कुछ शीतल बनाने में सक्षम न हो सकेंगी।"

"सबके रहते वह चोर, चोरी करने में कैसे समर्थ होगा?"

"अहो! उस चोर के कला-कौशल्य का प्रमाण यह है कि वह किसी के भी आँख में लगे काजल को चुरा लेता है। देखती हुई भी आँखें यह नहीं जान पाती कि हम किसी के द्वारा कज्जल विहीन अशोभित बना दी गई हैं।"

"भाई ! चौर्य-पटु चोरी भी न करे, तो क्या भूखों मरे क्योंकि उसके पास सभी धन्धों का अभाव है। उसका भरण-पोषण चित्त के अन्न से होना ही सम्भव है इसलिये अपने से उसको चित्त का सर्व समर्पण कर देना चाहिये अन्यथा वह अपने मनोनीत के नैपुण्य से, चित्त-धन का येन-केन प्रकारेण अपहरण करके ही तो जीवित रह सकेगा।"

स्याल-भाम दोनों मन्द-मन्द मुसकान के साथ परस्पर चित्तापहारी के पद में प्रतिष्ठित हो गये।

"अहो ! वह चोर इतना खतरनाक नहीं है कि जितना चौर-पटु के गृह में प्रवेश करके दिन-दहाड़े, उसका सर्वस्व लूट ले जाने वाला, यह भी एक आश्चर्य-वार्ता है। चलें, चित्रालय को……………"कहकर भाम, श्याल के साथ चित्र भवन में पहुँचकर वहाँ की नव्य-भव्य बाह्य, कलात्मक भीतियों को देखकर कलात्मक कलाकारों की चातुरी पर मुग्ध हो गये। भवन के नियत सेवकों व रक्षकों ने, युगल कुमारों की अभ्यर्चना करके अपने भाग्य की प्रशंसा की, पुनः उन्होंने अपने को हर्षातिरेक की स्थिति में स्थित कर दिया, तदनन्तर………प्रकृतिस्थ होकर, सादर सप्रेम चित्रसारी ले गये युगल-कुमारों को वे।

चित्रशाला में भगवत अवतारों, भक्तों, राजर्षियों, ब्रह्मर्षियों, महर्षियों, देवर्षियों और देवों के चित्रों की चित्रणकला कमनीयता, प्रतिबिम्ब में साक्षात् बिम्ब के दर्शन का भ्रम उत्पन्न कर रही थी। चित्रसारी क्या ?

वह महापुरुषों से पूर्ण एक भव्य नव्य नगरी थी, जिसका वातावरण सर्वथा शान्त था। वहाँ के निवासी सभी मौन थे। उनके संकेत से ही उनके कर्म ज्ञान, योग, भक्ति और प्रपत्तिपरक चेष्टायें, स्थितियों के साथ समझी जाती थीं, बिना भोजन के जीते हुये, वहाँ के लोग हृष्ट-पुष्ट और हँसते हुये परम प्रसन्न दिव्य देवताओं की भाँति प्रतीत होते थे। सभी वस्त्राभूषणों से आभूषित एवं चन्दन चर्चित-वदन, शरीर-सम्पत्ति से सम्पन्न थे।

"अहो ! चित्रकार भी एक प्रकार के विधाता ही होते हैं।" रसिक राय रघुनन्दन ने कहा।

"तभी तो विधाता के विधाता अपने अधीन रहने वाले, विधि की कला का दर्शन करने के लिये अपने सहचर सखा के साथ चले आये हैं, श्याल की मधुर वाणी सुन-सुनकर परम प्रसन्नता से भरे, सीताकान्त शीघ्र

वहाँ चलने के लिये समुत्सुक हो रहे हैं, जहाँ उनके चारुतम चरित्रों की चित्रावली क्रमबद्ध चित्रित है। चित्ताकर्षक आपश्री से सम्बन्धित ये चित्र हैं,—रघुवंश-विभूषण।"

"अच्छा ! आपके प्रथम दर्शनानन्द का सूचक चित्र कहाँ है ? निमि-कुमार !

प्रथम से लेकर, अंतिम चित्र की कला-कौशल्य का दर्शन, कौशल-किशोर चाहता है।

"आइये ! और आगे आइये ! यहाँ से भामश्री से सम्बन्धित चारुतम चित्रों की पंक्ति प्रारम्भ होती है, प्राणसखे ! यह देखें, श्याल के भाग्य विवर्धक भाम का प्रथम-पदार्पण चित्र, रामश्री व लक्ष्मण कुमार अमराई में विद्यागुरु विश्वामित्र जी के साथ पधार रहे हैं, इस चित्र में श्रीराम व श्री गाधिनन्दन जी की वार्ता, आम्रवन में तत्काल रहने के विषय में हो रही है। ये चित्र सानुज विश्वामित्र जी के साथ स्नान-ध्यान-अशन और आराम के हैं और यह चित्र अमराई के बीच पुष्प-वाटिका एवं तुलसी उद्यान में विहरते राम-लक्ष्मण दोनों बन्धुवरों का है तथा इसी समय मुनिवर मिलन के लिये आये हुये स-समाज इस निमिकुमार के पिताश्री का यह चित्र है, प्रणाम करते हुये मिथिलेश्वर को उठाकर, ऋषिराज हृदय से लगा रहे हैं और इस चित्र में पिताश्री एवं राम के इस श्याल को समीप बैठाकर, कुशल-समाचार पूँछ रहे हैं, मुनिवर।"

"सखे ! मिथिला मही में प्रथम-प्रथम पदन्यास करने का यह चित्र है, जो बहुत ही सुन्दर और सजीव है। अहो ! ऐसा लगता है कि जैसे दर्पण में राम ही को राम देख रहा है। बहुत अच्छे ! बहुत अच्छे !"—कहते-कहते भाम के नेत्रों का विषय, प्रकट श्याल का शरीर भूल गया और चित्रों में तादात्म्य हो गया।

"लक्ष्मण ! संभव है गुरुदेव की इच्छा इसी आम्रवन में अभी ठहर जाने की हो। तभी तो मुनिराज, वनराज की भाँति समेत बच्चों के बन में प्रवेश कर रहे हैं। आर्य ! यह अमराई भी तो, अमरों के उद्यानों की श्री शोभा को निम्न-नयना बनाने में सक्षम हो रही है।"

"वत्स रघुनन्दन ! एकान्त प्रिय महात्माओं के लिये, यह आम्रवन बहुत ही सुविधाजनक प्रतीत हो रहा है। फूल-तुलसी-जल-फल आदि आवश्यक वस्तुओं का अभाव भी नहीं है। आसन जमाने के लिये बहुत ही मनोरम उत्तम स्थान है, कहिये आपकी क्या इच्छा है ?"

"प्रभो ! आपश्री की इच्छा ही राम की इच्छा है। दास के मन को भी यह स्थल अतिशय आनन्दोत्पादक लग रहा है।"

"राम यहाँ रुकने में एक कारण और भी है, वह यह कि आप चक्रवर्ती कुमार हैं पुनः हमारे साथ हैं, अस्तु, महाराज जनक के महल में सीधे पहुँच जाना, आपके अनुरूप न होगा। महाराज स-समाज आकर, यहाँ से उत्सव के साथ आपको नगर प्रवेश करायें तो दशरथनन्दन के अनुरूप होगा, क्यों ?"

"महर्षे ! राम आपकी सेवा में, आप श्री के साथ है, उसे व्यक्तिगत सम्मान की भावना स्वरूप से भ्रष्ट करने में समर्थ सिद्ध होगी।"

भाई ! आप इस अमराई के पोषक पुरुष हैं, क्या ? हम इस बगीचे में ठहरने के लिये अनुमति चाहते हैं। बार-बार प्रणाम करके—

"महर्षे ! यह बगीचा आपका है, आप स्वतन्त्र रूप से इसका उपभोग करें। हमारे महाराज मिथिलेश्वर ने महात्माओं और अतिथियों को सुख सुविधा पहुँचाने के लिये ही इसका निर्माण कराया है, मुनिवर ! आपश्री के दर्शन से हम समेत मिथिला कृतार्थ हो गई, अब हम अपने महाराजश्री को आपश्री के आगमन की सूचना अविलम्ब देने का प्रयास करेंगे।" माली ने कहा।

ऋषियों ने अपना-अपना आसन खोलकर यथास्थान लगा लिया। सभी स्नान, सूर्योपस्थान, सन्ध्या, स्वाध्याय और अग्निहोत्र कर्म के पश्चात् भोजन-विश्राम करके श्री विश्वामित्र जी के समीप बैठे हुये हैं। सानुज श्री रामजी गुरु आज्ञा से आम्रवन के विविध स्थलों में विहार कर रहे हैं। इन चित्रों का दर्शन श्री राम रघुनन्दन को तदाकार वृत्ति की घनता में स्थित किये जा रहा था, जिसे अपने भाम का श्याल द्रष्टा रूप से देख रहा था।

"लक्ष्मण ! अमराई के मध्य यह पुष्प-वाटिका और यह तुलसी उद्यान कितना मनोरम है। गाधिनन्दन गुरुदेव की कृपा से ही हम लोगों को देव-वन विहार से कहीं अधिक आनन्द की अनुभूति हो रही है, यहाँ।

"सुरभित सुन्दर-सुन्दर सुमन और तुलसी मञ्जरी की भीनी-भीनी सुगन्ध का, पवन-प्रसंग से सारे समीपवर्ती प्रान्त में पहुँचकर, वहाँ के चराचर प्राणियों को सौगन्धिक शरीर के रूप का भेंट देना प्रतीत हो रहा है, आर्यनन्दन !"

"लक्ष्मण कोयल, कीर, चातक, मोर, आदि पक्षियों का कलरव भ्रमरों की गुञ्जार त्रिविध वायु का बहना, लताओं-वृक्षों, पुष्पों का वैविध्य

तथा उनके आरोपने, पोसने की कला-चातुरी का चमत्कार पूर्ण दर्शन कैसा प्रमुग्धकर एवं मनोरम है।''

"अग्रज की वार्ता अवश्य अनुसंधेय है किन्तु हम लोग यहाँ से अविलम्ब, आचार्यश्री के समीप प्रस्थान करें, देखें ! वह ब्रह्मचारी हम लोगों को बुलाने ही आ रहा है। वाद्य-ध्वनि एवं जन-कोलाहल से यह प्रतीत हो रहा है कि मिथिला महाराज विदेहजी स-समाज, गुरुदेव की अगुआनी व दर्शन करने के लिये मुनि श्रेष्ठ के समीप आ चुके हैं।''

"हाँ,-हाँ, बन्धु ! हम लोग तो अमराई के अमरत्व -जैसी मनोहरता में अपनेपन को ही भूल गये। अब शीघ्र चलें।

मैथिल समाज के समक्ष बैठे हुये, गाधिनन्दन को प्रणाम करके, मुनिवर की आज्ञा से उनके समीप बैठ जाने वाले, चित्र को देखते ही तदाकार वृत्ति से अभिभूत भावनास्पद राम रघुनन्दन भाव देश में स्थित होकर...... - ...।

"गुरुदेव ! आपश्री का परिचय क्या है ?''

"वत्स ! यही महाराज मिथिलेश्वर हैं, जो आपके पिताश्री के अभिन्न मित्र हैं। महाराज दशरथ और ये महाराज सीरध्वज दोनों मिलने पर इन्द्र और उपेन्द्र की उपमा का उल्लंघन कर जाते हैं इसलिये आपके ये पिता के समान, सम्मान और पूजन के योग्य हैं अतएव आप विदेहराज को प्रणाम करें।''

"अहो ! हम अपने पिताश्री के अभिन्न सखा श्रीराज सिरताज निमिकुल नरेश को पहचान नहीं पाये। बालक का अपराध क्षमा हो, (कहकर) आपका पुत्रवत् राम आपके श्रीचरणों में बार-बार नमन् करता है।''

प्रेमाश्रुओं से विभूषित वदन विदेह वंशावतंश, भानुकुल-भानु राम को, लक्ष्मण सहित हृदय में लेकर, अंक में आसन देते हैं और शिरसूँघकर.... "अमल कीर्तिधर-राम ! युग-युग जियें, आपका परम कल्याण हो।'' कहकर लाड़-प्यार करते हुये अघाते नहीं हैं। पुनः गुरुदेव के समीप बैठकर.......।

'अहो ! राजचिह्नों से संयुक्त हमारे समवयस्क असाधारण शरीर सम्पत्ति से सम्पन्न मूर्तिमान प्रेम वपुष वारे, अपनी आभा से समाज को आभान्वित करते हुये से, ये मारमद-मर्दनहारी कौन हैं ? इन्हें देखते ही हमारे हृदय में प्रीति का पायोधि उत्ताल तरंगे ले—लेकर कोलाहल मचा रहा है और ये पुरुष प्रवर भी हमारी ओर साश्रु नयनों को लगाये हुये,

अपनी खोई हुई महानिधि जैसे देखकर उसे संप्राप्त करने की कामना से आतुर हो रहे जान पड़ते हैं।" दशरथनन्दन ने कहा।

'वत्स ! ये महाराज मिथिलाधिप के कुमार हैं, जो सर्वभावेन अपने आचार्य प्रसाद से, अपने पिता एवं अन्य पूर्वजों के समान ही, ब्रह्मविद वशिष्ठ हो गये हैं। इनके हृदय-भवन में प्रेम का अखण्ड दीप सर्वदा दैदीप्यमान रहता है, अस्तु, अपने परिजन, पुरजन को अपने गुणों से ही, ये अत्यन्त प्यारे और आकर्षक सिद्ध हुये हैं। आपके ये वही सखा हैं, जिन्हें स्वप्न में देखकर आप मिलने के लिये आतुर थे।" कौशिक मुनि ने कहा।

"अच्छा..........!" साश्रु विलोचन रघुनन्दन मिलने के लिये ज्यों ही उठते हैं, त्यों ही निमिकुल-नन्दन उठकर हृदय से हृदय-धन को लगा लेते हैं, दोनों अपने आपे को भूलकर, प्रेम प्रवाह में बह जाते हैं। साथ ही समाज भी उस परिरम्भण से प्रभावित हुये बिना नहीं रहता। कुछ काल में बैठकर साश्रु..........।

"सखे ! कुशलता कभी आपकी सेवा करने से मुख तो नहीं मोड़ी।"

"कौशल किशोर के कृपा-वैभव का चमत्कार पूर्ण दर्शन, उनके कृपाकांक्षियों को सदा होता रहे, तो उनके सदा योगक्षेम होने में कौन आश्चर्य है ? अब तो कृपा का कोश स्वयं आकर, आपके सखा के हाँथ लग जाने से उसकी कुशलता तो सभी सुर-नर-मुनि समुदाय के मन में स्पर्धा उत्पन्न करने की जननी बन जायगी। आनन्द..........! आनन्द !!" लक्ष्मी-निधि ने कहा।

"सखे ! स्वप्न में आई हुई, आपकी सलोनी मूर्ति ने यहाँ आपको देखते ही बता दिया कि, 'मैं यही थी और यह मैं ही थी।' किन्तु व्यवहार दृष्ट्या राम को, अपने गुरुदेव से आपका परिचय प्राप्त करना आवश्यक हो गया था।"

"आत्मा,-आत्मा को पहचान लेता है, सजातीयत्व, सहज स्नेहत्व, सहज ज्ञानत्व, सहज प्रकाशत्व, सहज सखत्व, सहज अविनाभावी स्थित्व और सहज सच्चिदानन्दात्मकत्व ही इसमें कारण हैं अतः अपने आराध्य सखा को समझने में विलम्ब न हुआ, गत-रात्रि के अन्तिम प्रहर में ही आपश्री के दर्शन, मिलन और वार्तालाप का संयोग, स्वप्न में लगा था, जो वर्तमान मिलन का सूचक था, पुनः हमारे त्रिकालदर्शी आचार्य प्रवर श्री याज्ञवल्क्य जी ने भी आज आपश्री के दर्शन लाभ का संकेत किया था,

अतः दर्शन होते ही हृदय में उत्साह, उल्लास के साथ प्रेमोत्कर्ष की स्थिति का अभ्युदय-सा होने लगा था। हमारे पिताश्री को भी आपके पहचानने में किंचित विलम्ब और संशय का स्पर्श नहीं हुआ।''

''अवश्यमेव राम और लक्ष्मीनिधि, एक साथ, एकात्म होकर पूर्व में रहे होंगे, तभी तो आज परस्पर देखकर पूर्व प्रेमी परिचित की भाँति प्रेम में सराबोर हो गये हैं।'' रघुनन्दन ने कहा।

इतने में ही चित्रशाला के अधिकारी कर्मचारी आकर कहने लगे—'आज समय का अतिक्रमण हो गया है, राज सदन से राज-राजेश्वरी महारानी सुनयना जी का संदेश आया है कि, 'युगल कुमारों के आने की प्रतीक्षा में वाट जोह रही हैं हम'।''

यह श्रवण करते ही श्याल ने अपने भाम से कहा कि, ''आपश्री की प्रतीक्षा, अपनी अम्बा जी कब से कर रही हैं इसलिये हम और आप चलें मातृ-सदन को, पीछे हमारे दाऊ जी समाज को लेकर आते रहेंगे।''

चित्रों की तदाकारिता से यही बोध हुआ श्याम सुन्दर को कि प्रथम-प्रथम हमको अपने सखा की मातुश्री का दर्शन होगा। आनन्द ! आनन्द !!

श्याल-भाम दोनों चित्र—गृह से निकलकर जब बाह्य वातावरण में आये तो बाह्य उपकरणों से, चित्रशाला में मात्र चित्र हैं, का ज्ञान राम की बुद्धि में चमकने लगा। वर्तमान की चित्र तदाकारिता का दृश्य अतीत के साक्षात् दृश्य में समाविष्ट हो गया। वासस्थान पहुँचते-पहुँचते रघुनन्दन स्वस्थ हो गये और बैठकर कहने लगे··· ·········

''सखे ! चित्र कलात्मक हैं, कुशल कलाकार की बलिहारी ! जिसकी कला ने राम को अतीत-वर्तमान, शाम-सबेरे और जड़—चैतन्य के ज्ञान से वंचित कर दिया। धन्य है, मिथिला व मिथिलावासियों के वैभव को, जिसने अपने यहाँ के जड़-पदार्थों में जड़ता के स्थान पर चेतनता का भ्रम उत्पन्न कर, राम को व्यामोहित कर दिया।

इस प्रकार चित्रसारी के दर्शन की राम-कथा, जो अब तक समयाभाव से न सुना सके थे, लक्ष्मीनिधि अपनी प्राणवल्लभा को सुनाकर कहे कि इसी प्रकार कई अवसरों पर तत्सम्बन्धी चित्रशाला के चित्र राजीवलोचन राम को अपने आकार में स्थित कर आवेशित कर देते थे। मैं देख-देखकर कभी हर्ष और कभी विषाद की स्थिति में स्थित हो जाता था। कुँवर-

कान्ता, सीताकान्त का मैथिल प्रेम सुन-समझकर, राम के हार्दानुराग और कृपालु स्वभाव की प्रशंसा करके पुनः विनयावनत, कथा श्रवण करने की मुद्रा में स्थित हो गईं।

× × ×

२६

संध्या का सुहावना पावन समय था। भगवान भास्कर अस्ताचल जाने के लिये अपने रथ का वेग बढ़ा रहे थे, अरुण अरुणिम आभा बिखेरने के लिये उत्सुकता प्रकट कर रहे थे। निशा अन्धकारास्त्र को लेकर प्रकाश के स्थान को तमसाछन्न बनाने के लिये समुत्सुक थी किन्तु किरण माली के एक किरण-बाण का स्मरण करते ही वह काँप जाती थी फिर भी अपने साहस का परिचय देने के लिये आगे ही बढ़ती आ रही थी। दिवाकर भी दिनभर की यात्रा से थक से गये थे अतः विवश होकर अपने किरण-बाण, आत्म-त्रोण में डालने के लिये उद्यत से जान पड़ते थे, प्रतीति हो रही थी कि निशा-नारी पर बाण प्रहार करना उचित न होगा इसलिये पराजय स्वीकार करके प्रतिपक्षी के न आने के प्रथम ही वे संग्राम-भूमि छोड़कर पर्वत के अन्तराल में प्रवेश कर जाना चाहते थे। इधर काली के स्वागत में पक्षियों का कलरव नाद हो रहा था, नक्षत्रों की दीपमालिका जलाने की तैयारी के लिये निशीथ-भक्त समुत्सुक थे, कुमुदनी-नारियों का परिवार उत्फुल्लमना अपनी श्वेत कान्ति की ज्योति से रमणी रंजना रजनी की आरती उतारने के लिये जलाशय में एक पाँव खड़े होकर प्रतीक्षा कर रहा था। कमल-वन अपने विकासक दिन की विरोधिनी रात्रि का मुख देखना उचित न होगा अस्तु संकुचित मुद्रा में अपने शिर को निम्न दिशा की ओर करने को सोच रहा था। शीतल, मंद, सुगन्धित त्रिविध वायु बहकर बुद्धिमानी का परिचय दे रहा था कि हम उभय पक्षी हैं, निर्विरोध हैं, समता संयुक्त हैं। पुष्प परिवार में परस्पर फूट हो जाने के कारण कुछ दिन के पक्ष में थे, कुछ रात्रि के, इससे सौगन्धिक सेवा दोनों को समान प्राप्त थी। वन पशुओं को अपनी आहार व्यवस्था और गृह-पशुओं को अपनी आराम व्यवस्था के लिये निशितम की प्रतीक्षा हो रही थी। राम रघुनन्दन स्व श्याल निमिनन्दन के साथ वाटिका बिहार उक्त बेला में करते हुये तज्जनित आनन्द की अनुभूति कर रहे थे।

"अहह! कैसी यहाँ अर्द्धनारीश्वर भूत-भावन भगवान शंकर की दिव्य मूर्ति है। सखे ! लगता है अपलक इनका दर्शन अतृप्त आँखे करती ही

रहें, इन्हीं के कृपा प्रसाद से हमको यह मिथिला अपनी करके प्राप्त हुई है, इन्हीं के अमोघ आशीर्वाद से श्री कीर्ति और विजय प्राप्ति का भाजन बड़े-बड़े महिपालों के रहते राम बना है, शोक-सिन्धु में डूबती हुई मिथिला इन्हीं पार्वती-पति की अनुकम्पा से उसमें अस्त न होकर, आनन्द सिन्धु का समनुभव कर रही है अतएव अपने श्याल के साथ आपका भाम इन भवानी व भवानी-पति का दर्शन करना चाहता है।'' गिरिजा बाग विहार करते हुये रघुनन्दन राम ने कहा।

''कल्याणकर भगवान शंकर निमिकुल के निर्वाहक एवं संरक्षक हैं, इनकी अहैतुकी कृपा की वर्षा मिथिला में सब ओर से सर्व समय एक रस होती चली आ रही है, जिससे स्वार्थ-परमार्थ सुख-सुकृत की खेती सदा समुन्नतशील रही। श्री आचार्य एवं पितृ-आज्ञा से, रामश्री की सम्बन्ध कामना से कमला किनारे आशुतोष की आराधना करने का सौभाग्य उनके इस सेवक को सुलभ हुआ था, छठे महीने में ही भगवान भोलेनाथ ने दर्शन देकर आपश्री से सम्बन्ध होने के साथ-साथ और भी अनेक वरों का दान दिया था, अन्त में इच्छानुसार अपना दर्शन लाभ बताकर अन्तर्धान हो गये थे। अहह! उनका आशीर्वाद प्रत्यक्ष होकर राम के श्याल को राम का बनाया है, जय हो पार्वती-पति की! जय हो गिरिजा महेश्वर की! जय हो भव-भवानी की! जय हो......जय हो......'' कहकर निमिकुल कुमार पुलकित हो उठे।

''श्याल-भाम दोनों मन्दिर में पूजन सामग्री समेत प्रवेश करें और अर्द्धनारीश्वर महादेव का दर्शन कर अपने को कृतार्थ करें, ठीक है?''

''रघुकुल में कोई ऐसा नहीं जो अनुपयोगी असत वार्ता का विनियोग करता हो कि पुनः रघुवंश विभूषण के विषय में कुछ कहना। सेवकों द्वारा पूजन सामग्री पूजक के पास मन्दिर में पहुँच चुकी है, संभव है पूजक ने आपश्री के प्रतिनिधित्व में स्थित होकर, पूजा भी कर दी हो, हम लोग शीघ्र मंदिर में चलें'' राम के श्याल ने कहा।

''चक्रवर्ती कुमार आप श्री की ओर से पूजन हो चुका है, पुष्पाञ्जलि समर्पण के साथ प्रणाम करना शेष है,'' पुजारी ने कहा।

युगल नरपतिनन्दन अर्द्धनारीश्वर भगवान का स्तवन, प्रदक्षिणा, पुष्पाञ्जलि, समर्पण और प्रणाम करके सम्मुख आसन में बैठ गये। निमि-कुल कुमार के संकेत से पुजारी बाहर जाकर किसी को भीतर आने की

अनुमति न देने के स्थान में स्थित हो गया। युगल कुमार भगवान भोले नाथ के ध्यान में स्थित, बाह्य ज्ञान को भूल गये, अन्तर्जगत में दोनों भगवान आशुतोष का दर्शन कर-करके प्रेम परिपूर्ण हो गये। 'राम, रघुनन्दन की जय हो ! जय हो !!' की उच्च ध्वनि ने कर्णों में प्रवेश करके, युगल कुमारों को ध्यान से पृथक कर आँख खोलने को बाध्य कर दिया।

"अहह ! परम प्रसन्न मुद्रा में स्थित अन्तर्जगत के ध्येय आशुतोष अवढरदानी भगवान भूतभावन का दिव्य दर्शन चर्म चक्षुओं से हो रहा है। जय हो गिरिजा-महेश्वर की ! जय हो प्रलयंकर-शंकर की !

"चरण प्रान्त में पड़े हुये युगल कुमारों को उठाकर हृदय से लगा लिया, वृषभध्वज ने। परम प्रेम की तीन सरिताओं का संगम बहुत ही आकर्षक था, किन्तु उस त्रिवेणी में गोता लगाने वाले उन तीनों के अतिरिक्त वहाँ अन्य कोई न था, कई डुबकियाँ लगाने के पश्चात् भीगे वस्त्र तीनों त्रिवेणी-तट पर खड़े हो गये।

साश्रु विलोचन त्रिलोचन के स्वामी का सेवक भाव कितना महान एवं सरस है, जिसने सर्वतन्त्र स्वतन्त्र को पारतन्त्र्य में निरंकुश को अंकुश के नीचे, प्रार्थेय को प्रार्थी के आसन में, सर्व सेव्य को सेवक की स्थिति में स्वराट को सिपाही के वेष में, महान से महान को अणु रूप में एवं सर्वशेषी को शेष स्वरूप में, सर्व भोक्ता को भोग्य रूप में, सर्वरक्षक को रक्ष्य रूप में, खड़ा होने को बाध्य कर दिया है। इस विचार धारा में मग्न भगवान भोलेनाथ ने अपने आराध्य की प्रसन्नता के लिये अपने. अनेक अमोघ आशीर्वादों से श्याल-भाम का मंगलानुशासन उनको हृदय में लिये, सिर सूँघते हुए किया, तदनन्तर अन्तर्धान होकर, युगल कुमारों को अपने वियोग से उनकी अतृप्त आँखों से अश्रु बहाने का अवसर उपस्थित कर दिया।

"सखे ! भगवान भवानीपति कितने कृपालु हैं, हम दोनों के क्षणिक ध्यान एवं सकृत प्रणाम से प्रसन्न होकर, उन्होंने अपना हृदयालिंगन अत्यधिक वात्सल्य रस का पेय पिलाते हुये प्रदान किया है। हम दोनों को सदा-सदा के सम्बन्धी बतलाकर भविष्य में भी इसी सम्बन्ध-रस के परस्पर भोक्ता बने रहने का आशीर्वाद भी दिया है, धन्य है हम दोनों के सौभाग्य को," इस प्रकार कहते हुये प्रेम पारखी राम प्रेमाप्लुत हो गये।

"वास्तव में भगवान शिव जब अपने भक्तों के प्रणाम मात्र से द्रवित हो जाते हैं तब वे अपने भक्त-भयहारी आराध्य की स्तुति व प्रणाम प्रक्रिया

को देखकर विलम्ब से दर्शन देना कैसे सह सकते हैं, यह रहस्य वार्ता हमारे आचार्य और स्वयं शंकर भगवान ने कही थी, आज उस रहस्य का भेद खुल जाने से योगिवर्य की वाणी का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया। अपनी मिथिला के भाग्य-वैभव का उत्कर्ष कितना महान है कि जिसके आगे सर्व सुर-वन्दित विधि-हरि-हर के पुर का भाग्य वैभव संकोच के साथ शिर झुकाने को विवश हो जाता है अतएव मिथिला के भाग्य विधाता की जय हो, जय हो, सदा जय हो।''

मिथिला का भाग्य स्वयं सिद्ध है, तभी तो आपका माना हुआ भाग्य विधाता अपने-आप सिद्धि-सदन के आँगन का अतिथि बना है। सखे! आज एक गुप्त वार्ता का स्मरण आ गया है, उसे आपसे छिपाना उचित नहीं समझता, वह यह कि प्रथम-प्रथम गुरु आज्ञा से इस मन्दिर में आपके द्वारा ले आया गया, तब आपके चले जाने पर राम, भगवान शिव की आराधना में लग गया था, थोड़ी देर में ही आशुतोष ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर, अपने पिनाकी नाम के धनुष का खंडन करने के लिये अनुशासन किया था अतएव उन्हीं त्रिनेत्रधारी की कृपा शक्ति व प्रेरणा से धनुष का भंजन राम के हाँथ होना संभव हुआ था अन्यथा गौर और श्याम का सम्बन्ध संयोग असंभव था इसलिये वास्तव में दोनों के भाग्य विधायक शूलपाणि भगवान भोलेनाथ ही हैं।''

''दास कब कहता है कि आशुतोष का अकृतज्ञ हूँ, रामश्री की प्राप्ति के लिए उनकी आराधना ही की थी तथा तत् कृपा से ही भाग्य वैभव के विधाता को पुर में प्रवेश करने का द्वार खुल गया था अतः दास अपने पर अकारण कृपा करने वाले विश्वनाथ शंकर का सदा कृतज्ञ है। रामश्री व राम के श्याल के कथन में अन्तर अकिञ्चित है समझने पर, राम के इस आत्म सखा ने प्राप्तव्य वस्तु उसे कहा है, जिस विधि-हरि-हर-वन्दित चरण ने मिथिला पधार. कर वहाँ के वासियों को शोक-सिन्धु से उबार, आनन्द के सिन्धु में निमग्न कर दिया है और प्रापक अर्थात् प्राप्त कराने वाला श्रीमान आशुतोष भगवान शंकर को कहा है, जिन्होंने प्राप्तव्य की प्राप्ति का आशीर्वाद ही नहीं अपितु उसे प्राप्ता के सम्मुख लाकर सदा के लिये उसको अपना बना दिया है।''

(दोनों आत्म सखा भगवान भोलेनाथ की कृपाप्राप्ति से प्रसन्न परस्पर एक-दूसरे के कण्ठ-हार बन जाते हैं।)

"सखे ! अब यहाँ से वास भवन को प्रस्थान करना चाहिये, समयाभाव भी प्रतीत हो रहा है। हाँ, वाटिका बिहार करना हो तो अल्प समय में उसके अल्पाङ्गों को ही देखकर चलने का प्रयास करना उचित होगा. क्यों ठीक है या नहीं ? विलम्बित बेला में लक्ष्मीनिधि-निकुंज हम लोगों का पहुँचना वहाँ के लोगों को प्रतीक्षा की कटुता का अनुभव कराना है, रही वाटिका भ्रमण की बात। वाटिका अच्छी लगने पर उसके उपयोग से कहीं दृश्यों के दर्शन व्यामोहित कर अतीत काल को वर्तमान में उपस्थित कर दें तो क्या करूँगा। व्यर्थ में चिन्ता, भ्रम और संकोच को आमन्त्रित कर, श्वसुर पुर में अपनी हँसी कराने का साधन बनाना है अतएव सीधे श्याल-सदन, श्याल को चलना चाहिये। फूलवाटिका का दृश्य तो आँख बन्द करके उसके तनिक स्मरण करने से ही सर्वभावेन अन्तर चक्षुओं को वैसे ही दृष्टिगोचर होने लगता है जैसे कि प्रथम बार के दर्शन से अनुभव का विषय बना था,"—रसिकराय रघुनन्दन ने कहा।

मेरे सर्वस्व राम ! आपश्री के प्रथम दर्शन काल में श्री गाधिनन्दन विश्वामित्र जी ने हमारे श्रीमान पिताश्री से आपके विषय में कहा था कि ये संसार के सभी चराचर प्राणियों को प्राणाधिक प्यारे हैं, यह कहकर सर्व शरीरी आपको बतलाना ही दीर्घदर्शी मुनि का मन्तव्य था। रत्न पारखी जौहरी हमारे दाऊ जी को भी महारत्न को पहचानने में विलम्ब न हुआ था, अस्तु आप बगीचे के वेलि-वृक्ष को देखें, न देखें आत्मरूप से उनमें स्थित हैं ही तथा अपने बाह्य नेत्रों से न भी देखें, किन्तु अन्तर्दृष्टि से देख ही रहे हैं, तभी तो उनकी चर्चा से उन्हीं में लीन हो जाने का भय, अभय प्रदाता को भी है। वायुदेव आपश्री का स्पर्श करके बगीचे के सभी वृक्षों को स्पर्श किये हैं, कर रहे हैं, अतः फूलवाटिका को आपके स्पर्शानन्द से वञ्चित नहीं रहना पड़ा। इसके अतिरिक्त आप न भी देखें बाह्य भाव से, परन्तु ये सब वृक्ष उन्नत शिर एक पैर से खड़े होकर, आपका दर्शन लाभ ले ही लिये हैं अतः इनके परमपद स्वरूप आपसे पृथक रहने के कारण भूत संस्कारों का सर्वनाश हो चुका है अतएव ये सब जगत वन्दनीय आपके द्वारा बना लिये गये हैं। अच्छा है, चलें हम लोग भवन को।" निमिकुमार ने कहा।

भवन में पहुँचकर दोनों, स्वजनों को सुखदायक सिद्ध हुये। समय पाकर श्री सिद्धि कुँवरि जी अपने प्राणवल्लभ से उपर्युक्त श्री सीताकान्त की अन्तर कथा श्रवणकर आनन्द स्वरूप हो गई और पुनः कथा श्रवण करने के लिये करबद्ध प्रार्थना करने लगीं।

× × ×

३०

मैया के महल में, मैया के कर-कमलों के परोसे हुये षटविधि विविध व्यञ्जनों को जो वात्सल्य रस से आप्लावित थे, सुनयनानन्दवर्धन श्याल-भाम पाकर सुखावह परम तृप्ति की अनुभूति के साथ एक परमासन में बैठे थे, माँ ने ताम्बूल, गंध, अपने हाँथ समर्पित करके, दोनों की आरती उतारी और मंगलानुशासन किया। वात्सल्याधिक के कारण अपने अङ्क में दोनों कुमारों को लेकर हृदय से लिपटा लिया, पुनः श्रीराम को ठोढ़ी का स्पर्श करके प्यार से······ "अहो! मुझ जैसी त्रिभुवन धन्या सुर-पत्नी, मुनि-पत्नी, नर-पत्नी कोई नहीं हैं, जिसे सर्वगुण सम्पन्ना सीता जैसी नारीणा-मुत्तमा सुकन्या, श्रीराम जैसे सर्वं-पर, सर्व-सुलभ, सर्व-कल्याण-गुण-गण-निलय एवं अनन्त सौन्दर्य माधुर्यादि काय सम्पत्ति से सम्पन्न, जमाई और आचार्य-कृपा-पात्र, सुर, नर-मुनि-मन आकर्षक परमार्थ पथानुगामी, परम पुरुषार्थ प्राप्त दैवी सम्पत्ति सम्पन्न, क्षात्र धर्म निष्णात, परमवीर निमिकुल-वंश उजागर, कर्म, योग, ज्ञान, भक्ति, प्रपत्ति और प्रेम के रहस्यार्थ की साक्षात् मूर्ति, सरहस्य वेद-वेदाङ्ग ज्ञाता, मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, वेदाज्ञा का यथार्थ पालन करने वाला एवं अपने भगिनि-भाम को सर्वविधि सर्मपित कर, उनको अपना सर्वस्व समझने वाला, सीताराम का सर्वस्व प्राणाधिक प्रिय लक्ष्मीनिधि जैसा पुत्र प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो। अहह! यह सौभाग्य अपने आराध्य देव, आचार्य देव, और परम विरागी ब्रह्मविद-वरिष्ट ब्रह्मस्वरूप, योगिवर्य, नृपकुलभूषण अपने पति परमेश्वर एवं पूर्वजों की अनाख्येय अकारण अनुकम्पा का साक्षात् प्रमाण है, अब मैं पूर्ण हो गई, निःशेष मनोरथ हो गई, प्राप्तव्य को प्राप्त कर ली, ज्ञातव्य के ज्ञान से युक्त हो गई, भव-भोगों से मुक्त हो गई और रस रूप द्विधा स्वरूप सर्वशक्ति सम्पन्न परब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तम भगवान से युक्त हो गई।" साश्रु वदना माँ ने गद्गद वाणी में कहा।

"अम्बाजी! जिस मूर्ति त्रय की प्राप्ति से आप अपने को सौभाग्य-शालिनी मान रही हैं, वह आपश्री की सदा से सहज निधि रही है और भविष्य में रहेगी, कभी-कभी आप यह सोचकर कि 'भविष्य में मुझे ये क्या मिलेंगे' शंकाजनित अभिनिवेष नामक क्लेश से आक्रान्त हो जाती हैं, जिसकी कभी संभावना ही नहीं है अतएव इस शंका के राहु से अपने मुख-

मयंक में म्लानता आने का अवसर आप कभी न देंगी। आप जगत वन्द्या जननी हैं, राम कभी, किसी समय, किसी से असत्य भाषण नहीं करता।'' सुनयना जी के प्रिय पाहुन राम रघुनन्दन ने कहा।

''लाल ! निमिकुल के आधार आचार्य प्रवर योगिवर्य श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज ने, आपश्री व पुत्री सीता के विषय में जो तथ्य एवं रहस्य वार्ता आपके सास श्वसुर से कही है, वह दीर्घदर्शी मुनि एवं पूर्व कल्पीय रामायण व पुराणों से संशोधित है, पुनः आपके अलौकिक परम दिव्य जन्म-कर्म प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में सबके सामने समुपस्थित हैं किन्तु आपके श्री-विग्रह का माधुर्य-महोदधि तटवर्ती ऐश्वर्य के महानगर को अपने में आत्मसात करने में किंचित विलम्ब नहीं करता इसलिये कभी-कभी वियोग का भय हृदय को कम्पित कर देने में समर्थ हो जाता है। गुरु गाधिनन्दन की आज्ञा एवं आशीष को प्राप्त कर, धनुर्भङ्ग करने के लिये चलते समय आपके अपूर्व भूत माधुर्य के महासागर ने मिथिला को अपने में अस्त कर लिया था, उस समय आपके सास-श्वसुर को यही लगता था कि राम के कंजाति कोमल करों को कहीं वज्राति कठोर पिनाक के स्पर्श से आघात हो गया या सभा मध्य अन्य राजाओं की भाँति विजय लक्ष्मी ने उनका वरण न किया तो यह असह्य हो जायगा इसलिये धनुष तोड़ने हेतु आपका जाना गुरुजनों द्वारा रोक दिया जाय क्योंकि सीता का कुँआरी रहना भले सह लिया जायगा परन्तु राम का पराभव सर्वभावेन असह्य हो जायगा, तात्पर्य यह है कि माधुर्य के प्राबल्य से ऐश्वर्य ज्ञान कहाँ अदृश्य हो जाता है, कहीं लुके-छिपे दीख भी पड़ा तो कृशकाय हो जाने से वह माधुर्य के साथ संग्राम करने में असमर्थ होकर, सामने आने में भी संकोच करता है। बलिहारी हमारे जमाई दाशरथि राम की माधुरी महिमा की।'' अम्बा ने कहा।

''अम्बाजी का माधुर्य-महोदधि में मग्न हो-होकर वात्सल्य रस से भावित भरपूर प्रेम ही तो मिथिला से बाहर जाने के लिये राम को अवरोध उत्पन्न करता है, यही कारण है कि लोक, अवध बिहारी को मिथिला बिहारी कह करके सुख की अनुभूति किया करता है। आप अपनी आँखें बन्द करके ध्यानस्थ हो जाँय तो संभव है कि बीच-बीच में उठने वाली शंका का शमन आपके ध्येय की कृपा से हो जायगा।''

माताजी श्रीराम वचनों का गौरव रखने व आदर करने की दृष्टि से ध्यानस्थ हो गईं और किंचित काल में चिदाकाश स्थित दृश्य के अदृश्य हो जाने पर गद्गद् स्वर में बोली............

"अहो ! कैसे अनुपम दृश्य का दर्शन चिदाकाश में चमत्कार पूर्ण हुआ जो मनसागोचर था, 'यतोवाचा निवर्तन्ते अप्राप्य मन-सा सह' वेद वाक्य का सर्वथा साक्षात्कार हो रहा था किन्तु 'चन्द्रशाखा न्यायेन' उस दृश्य के दार्शनिक स्वरूप का वर्णन व्यवहारिक वाणी से आपको श्रवण कराती हूँ, श्रवण करें ⋯ ⋯

अमायिक शुद्ध सत्व विशिष्ट ज्योतिर्मय सच्चिदानन्दात्मक साकेत धाम का दर्शन चिदाकाश में हुआ, उसकी नव्यता, भव्यता और दिव्यता किसी लौकिक उपमा के संकेत से समझाई नहीं जा सकती, वहाँ एक रत्न मंडप के मध्य रत्नवेदिका संस्थित स्वर्ण सिंहासन पर सुनयना की पुत्री सीता, नयनाभिराम जनक जमाई राम के साथ कोटि-कोटि सूर्य प्रभा को तिरस्कृत करती-सी विराज रही है, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न एवं अनन्त सखी-सखा, दासी-दास परिकर समूह सेवा साज लिये समुपस्थित हैं एवं अनन्त ब्रह्मा-विष्णु-महेश तथा अनन्त हरि अवतार लोकेशों के साथ सेवा में खड़े हैं। श्री चक्रवर्ती जी महाराज तीनों पटरानियों समेत और महाराज मिथिलेश महारानी सहित तथा रघुनन्दन के श्याल-सरहज इत्यादि सम्बन्धी अपने-अपने आसनों में आसीन अपनी-अपनी रसोपासना सेवा-पद्धति से युगल किशोर-किशोरी के मुखोल्लास का हेतु बन रहे हैं। सभा-स्थित-सन्म्बधी समाज सदा स्वरस से अभिभूत आनन्द-कन्द रघुनन्दन के विकसित मुखाम्भोज को देख-देखकर, परमानन्द की अनुभूति कर रहे हैं। मैंने दृष्टा बनकर सर्वभावेन अपने समान ही अपने रूप को वैसे ही वहाँ देखा जैसे दर्श संस्थित प्रतिबिम्ब में अपने ही रूप का आकार दिखाई देता है, दृश्य-दर्शन कर मैं कुछ ही क्षणों में सभा स्थित अपने ही रूप में समाविष्ट हो गई और अनिर्वच आनन्द का अनुभव करते-करते पुनः मिथिला-मंडप-मध्य अपने प्रिय पाहुन राम के सम्मुख बैठी हुई, अपने को देख रही हूँ, यह सब हमारी सीता के वल्लभ राम रसिकेश्वर की लीला है जिसके द्वारा उनकी सासु को यह ज्ञान हो गया कि सीता व राम सदा-सदा के अपनी पुत्री व अपने दामाद हैं, संशय व भ्रम का समूल नाश हो जाने से आनन्द की परिवृद्धि अनन्त गुणा हो गई, आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!"

"अम्बाजी ! अब आप अपने राम के वियोगजनित क्लेश की शिकार नहीं बनियेगा। राम स्वयं आपका वैसे ही है जैसे आपका आत्मा। साथ ही जैसे आत्मा आपका आपसे अभिन्न है, वैसे ही आपका राम आपसे अभिन्न है। मिथिला और अयोध्या का दृढ़ सम्बन्ध पूर्व संस्कार से ही

वर्तमान में सुख संविधायक प्रतीत हो रहा है और वर्तमान के संस्कार भविष्य में भी इसी प्रकार दृष्टिगोचर होंगे क्योंकि इन संस्कारों के तीनों कालों में एकता, दृढ़ता, अनन्यता, अनन्य प्रयोजनता, अन्य सम्बन्ध बीज हीनता और तत्सुख-सुखिता एवं त्रयकालिका प्रेमी-प्रेमास्पद के नाम, रूप, लीला धाम में ही एक प्रियता एकरस अबाधित बनी रहती हैं और वह उसी प्रधान पुरुष की इच्छा शक्ति का चमत्कारिक वैभव है. जिसे आपने चिदाकाश में सबसे सेवित एवं वन्दनीय देखा है, अब हमारी अम्बाजी का चित्त, विटप, संशय-पवन के झोंके से कभी भी विचलित न होगा," सीताकान्त ने कहा।

"लाल ! लाड़िली सीता के वधू काल की पाद-प्रक्षालन बेला में आपश्री के सास-श्वसुर दोनों को साकेत-संस्थित लली-लाल की झाँकी का दर्शन हुआ था किन्तु माधुर्य के थपेड़े खा-खाकर सारा ऐश्वर्य ज्ञान न जाने किस गम्भीर गर्त में गुप्त हो जाता है, जिससे संयोग में वियोग की कल्पना आकर वैचित्ती भाव में स्थित कर देती है अतएव अब आपके संकल्प की सत्यता ही हम और हमारे परिवार को संशय-बन की कटीली झाड़ियों में उलझने से बचायेगी।"

मैया के वचनों को श्रवणकर मन्द-मन्द मुस्कराते हुए रघुनन्दन ने वात्सल्य रस की परिवृद्धि करके कहा, "अम्बाजी ! भूख लगी है।"

रस परिप्लुता माता ने राम को उठाकर 'चलो, चलो लाल !' लाड़-प्यार करते हुये साश्रु कहा, "मुझसे बड़ी भूल हुई जो अपने लाड़िले सीता-कान्त को उनके कहने के पहले पवाने नहीं ले गई, धिक्कार है जानकी जननी के वात्सल्य को।"

"अम्बाजी ! आपश्री चिंता न करें, राम ने आपके चित्त को उस समय की स्थिति से हटाने और आपश्री के वात्सल्य रस के पेय पीने के लिये, भूख लगी है, कहा है अन्यथा वही ऐश्वर्यपरक वातावरण न जाने कब तक बना रहता जिससे करणीय कृत्यों में अन्तराय की उपस्थिति संभावित थी। अच्छा चलें, आपके संतोषार्थ कुछ दुग्ध-पान कर लें।"

इस प्रकार श्याल-भाम दोनों जाकर माँ के दिये हुये दुग्ध का पान किये।

अपने प्राण वल्लभ के मुख से अन्तर राम-कथा को श्रवणकर सपरिवार अपने भाग्य-वैभव को सराहने लगीं तथा पुनः कथा श्रवण करने की मुद्रा में साञ्जलि शिर नत स्थित हो गईं, सिद्धि कुँवरि जी।

× × ×

३१

यद्यपि श्रीराम कथा की रसिकिनी वैदेही-बन्धु की वल्लभा के कर्ण अद्यापि कथा-मृत पान करने के लिये अतृप्ति की अनुभूति कर रहे हैं, नत शिर एवं कर सम्पुट के पुरुषकार से अपनी कामना की पूर्ति में पूर्ण प्रयत्नशील हैं तथापि अपने प्राण वल्लभ की इच्छा अपनी प्रियतमा के मधुर-मधुर वाणी से राम-चरित्र श्रवण करने की है, जानकर श्री श्रीधर कुमारी श्रोता के आसन में आज न बैठकर वक्ता के आसन को सुशोभित करेंगी, क्यों चित्रे ! क्यों चित्रे ! ठीक है न ?

''आपश्री की वाणी में सदा प्रियता, सरसता, सत्यता, परहितपरता, उदारता, गंभीरता के साथ राम-रस-रसिकता की पूर्ण धवल धारा उसी प्रकार प्रवहमान रहती है जैसे अक्षय जल स्रोत से जल की।'' चित्रा ने कहा।

''प्राणेश्वर ! आर्य नारी का परम सौभाग्य एवं सहज सुख यह है कि वह अपने पति-परमेश्वर के मुखाम्भोज को विकसित करने वाली सेवा में सदा संलीन रहे सजगता के साथ, इसके विपरीत आचरण नारी को आपत्ति के गर्त में डालकर उससे निकालने का प्रयत्न कभी नहीं करते अतएव जैसे आपश्री के सुख सम्वर्धन के लिये आपकी प्रियतमा के प्यासे श्रवण अतृप्ति, आदर, आसक्ति, और आतुरता को लिये हुए, अनवरत राम-कथा पान करने के लिये लालायित बने रहते हैं, वैसे ही उसकी रसना श्री सीतारामीय कथा के अभिरामीय अमृत का घोल पान करती हुई, आपका कैंकर्य :करने में आनन्द की अनुभूति करेगी, यह उसका सौभाग्य है, भगवत-रस के रसिक आपश्री के श्रवण अभी तक आप ही की मुख विनिश्रिता वाणी के माध्यम से राम-कथा सुनते रहे, अब आपसे अभिन्न अपनी सहचरी सेविका के मुख से श्रवण करने की कामना ने उनको वरण किया है, अस्तु श्रवण करें। बिड़ावल नरेश महाराज श्रीधर की कुमारी सिद्धि, जब परम भागवत क्षात्र-धर्म निष्णात मिथिलेश कुमार की अनन्या मन से बन गई थी, तब उनको पति रूप में प्राप्त करने की इच्छा से अभि-भूत वह श्री महालक्ष्मी जी की उपासना चित्रकरण-त्रिकाल करने लगी थी, दीर्घदर्शी नारदादि दिव्य ऋषियों द्वारा एवं अपने आचार्य श्री याज्ञवल्क्य जी से आप समेत आपकी अनुजा तथा दाशरथि राम रघुनन्दन की विमल कीर्ति विस्तृत रूप से उसके जननी-जनक को सुनाई गई थी, जो सिद्धि कुँवरि के श्रवणों का भी विषय बनी, पश्चात निमिकुल के आचार्य श्री ने हस्त

रेखा देखकर यह भी कहा था कि, "यह एक दिन मेरी शिष्य-वधू बनेगी" इत्यादि प्रेरणा स्रोतों से आसक्तमना होकर, श्री सीताराम को अपने ननँद व ननदोई रूप में दर्शन करने की त्वरा, आपश्री के दर्शन करने के समान उरोद्भूत हो गई थी, दिन में न भूख, न रात्रि को निद्रा, चित्त में चैन नहीं, मन में मौन नहीं, बुद्धि में अन्य विमर्श नहीं और अहं में अहंता नहीं, आत्मा तो आपकी अनन्या दासी बन ही चुकी थी, विरह की वह्नि चारों ओर से धू-धू करके धधकती हुई जलाने में उतर आई थी सिद्धि को, लगता था कि जिसकी यह है, उसको प्राप्त न हो सकेगी क्या ? किसी प्रकार दिन कटा तो रात नहीं, रात कटी तो दिन नहीं ।

एक दिन रात्रि के समय स्वयं के कक्ष में सिद्धि सोई थी, एकान्त पाकर विरह-वेदना ने उसे धर दबाया, प्राण घुटने लगे मूर्च्छावस्था ने वरण कर लिया. उस अवस्था में उसे एक दृश्य का दर्शन हुआ, वह यह है कि, सूर्य संकाश सिंहासन. सुखेन संस्थिता सेवाभरण भूषिता महालक्ष्मी, अनेकानेक शक्तियों से समावृत हैं, उनकी अङ्गकान्ति कनकोज्वल कमनीय अप्रतिम और अनिर्वच है । उन्होंने पाणिबद्धा सिद्धि सेविका से कहा कि तुम सुफल मनोरथा हो, जिसकी प्राप्ति के लिये तुम्हारी की हुई आराधना ने आराध्या को प्रसन्न करके प्रत्यक्ष दर्शन देने के लिये बाध्य कर दिया है, परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान राम की वह सहज स्वरूपा कल्याण गुण गणार्णवा सर्व शक्ति सम्पन्ना सीता मेरा ही आदि स्वरूप है. ऐसा कहने के पश्चात् महालक्ष्मी का दर्शन अपनी सर्वस्वा सीता के साक्षात् स्वरूप में होने लगा, प्रणिपात करने पर हृदय से लेकर देवि ने कहा कि,—"तुम मेरी सदा की भाभी हो।" इतने ही में दृश्य परिवर्तन हुआ और आप दोनों श्याल-भाम का दर्शन होने लगा, श्रीधर कुमारी संकुचित मुद्रा में ही दर्शन कर अपने को कृतार्थ मानने लगी, सीता स्वरूपिणी देवि ने कहा कि ये तुम्हारे प्राण पति परमेश्वर हैं और ये ननदोई हैं । सेविका को संकोच के कारण खुली आँखों से अब जैसा आप दोनों का दर्शन दुर्लभ रहा, पर निम्न नयना होकर भी रूप-माधुरी की मिठास पाने से उसके लालची लोचन वञ्चित न रहे। मूर्तित्रय की कृपा के साक्षात् दर्शन ने सिद्धि को सिद्ध सिंहासन पर बैठा दिया है तथा सदा-सदा के लिए अमृत बनाकर, उसका स्वाद लेने की योग्यता भी प्रदान कर दी है । हे मातृ वर दे ! आपकी जय हो, जय हो.... कहकर प्रणाम करने के पश्चात् दृश्य, अदृश्य में अन्तर्हित हो गया, मूर्च्छावस्था से भी उस बेचारी वियोगिनी का वियोग हो गया किन्तु गत स्थिति

में किये हुए मूर्ति-त्रय के दिव्य-दर्शन के वारि ने विरह वह्नि में झुलसने से उसको बाल-बाल बचा लिया था।

आज महालक्ष्मी के कृपा-वैभव का चमत्कार पूर्ण प्रसाद का साक्षात् दर्शन प्राप्त कर, सुफल मनोरथा होकर सिद्धि सर्वस्व पा गई है। सुन्दर सुगन्धित शरीर वाली सुर-सुन्दरियाँ भी उसके भूरि भाग्य को देखकर, स्वयं को कोसने लगी हैं, उपर्युक्त मूर्ति-त्रय की भावानुसार प्राप्ति, सिद्धि के किसी अनुष्ठान का परिपाक नहीं है अपितु परम प्राप्य की प्राप्ति, प्राप्य की अहैतुकी अनुकम्पा का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसी प्रकार कभी स्वप्न में, कभी स्मरण काल में, कभी सहज बैठे ही दृश्य-अदृश्य के रूप में दर्शन, स्नेह, सान्त्वना प्राप्त कर-करके कालक्षेप करती हुई, सिद्धि ने वियोग की आँच को, संयोग की सुधा के रूप में परिवर्तित पाया। उसकी नाव बिरह-सागर और भव सागर दोनों को पार कर बिना प्रयास किनारे लग गई। अहो ! यह कृपा वायु के बहने का परिणाम है। साधन के अभिमानी लोग चाहे जो बड़बड़ाते हों, मस्तिष्क की प्रतिकूलता में सभी स्वतन्त्र हैं किन्तु परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान की सशक्ति सेवा एवं उनके अभिन्न आत्मा परम भागवतों के कैंकर्य की प्राप्ति साधन-साध्य नहीं है अपितु उनके कृपा-वैभव का पूर्ण विकास है।''

येन प्रकारेण सिद्धि मुख विनिश्रित पूर्वकथा का पेय पीकर श्री सीताग्रज अन्य कथामृत पान करने के लिये अतृप्त से अपनी प्राणवल्लभा की ओर देखने लगे।

× × ×

३२

अहो ! सिद्धि के सर्वस्व उसके प्राणवल्लभ का शयनकक्ष सर्वभावेन सर्वोत्तम था। मदन की शय्या का मान संमर्दित करता हुआ पर्यङ्क अपने प्रतिबिम्ब की आभा से स्वर्ण-मणि वैदूर्यादि रत्न विनिर्मित भीतियों को आभान्वित कर रहा था। आवश्यकीय दिव्य सामग्रियाँ यथास्थान रखी थी, मणि दीप जग जग करते हुये प्रकाशित भवन में तत्सम्बन्धित एक नया निखार ला रहे थे।

सिद्धि के सौभाग्य की परिवर्धिका सुहाग रजनी मनाने की पुण्य बेला थी, शुभ सगुनों का बाहुल्य श्रीधर कुमारी के सौभाग्य सुख का असमोर्धत्व सूचित कर रहा था। समय पर उसने शयन कक्ष में स्वपति

परमेश्वर के दर्शन से प्रथम, अपनी विरह सम्भवा आर्ति की अधिकता को उतारा पश्चात् प्रेमासक्त होकर अपने प्राणवल्लभ की सविधि आरती उतारकर प्रणाम किया, चरण पीठ शिर स्थिता अपनी अर्द्धाङ्गिनी को युगल बाहुओं से उठाकर अपनी अर्द्धासनाधिकारिणी बनाने की कृपा की निमिकुमार ने। कुशल सम्बन्धी वार्ता विनियोग के अनन्तर कतिपय पति-पत्नी क्या हैं ? दोनों का स्वरूप एवं परस्पर प्रयोजन क्या है ? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर स्व-बुद्धि के अनुसार सेविका ने स्वामी को दिया पुनः श्री दशरथनन्दन व जनकनन्दिनी जू के स्वरूप, स्वभाव एवं कल्याण गुणों का चिन्तन, स्मरण-कथन करके 'उन युगल मूर्तियों के मुखाम्भोज को अपनी चेष्टाओं से विकसित दर्शन करना ही, परम भोग्य हम दोनों का आज से हो' यही सौभाग्य रजनी मनाना है और यही हम दोनों के सुख का चरमोत्कर्ष है, दोनों का निश्चय हुआ।

सौभाग्य रजनी के वास्तविक अर्थ रहस्य स्वरूप लाल-लाड़िली नवल किशोर-किशोरी के कैंकर्य-सुख का स्मरण-करते-करते निद्रा देवी के गोद में दम्पति सो गये। शयनावस्था में जिस दृश्य का दर्शन सुनयनानन्दवर्धन की वधू को हुआ था, वह मनसागोचर था, वाणी से उसका वर्णन संभव नहीं तो भी चन्द्रशाखा न्यायेन अन्य के मन को समझाने के लिये, उसे व्यवहारिक वाणी द्वारा यथाशक्ति व्यक्त करना अनुचित न होगा। चित्त तत्सुख सुखित्वम की भावना से भावित, तदाकारिता का स्पर्श कर रहा था, निद्रा देवी ने भी थपकियाँ दे देकर सिद्धि नामक अहं को अपने अङ्क में आश्रय दे दिया, सुषुप्ति अवस्था स्वरूप में स्थित आराम कर रही थी, इतने ही में पर-सुख असहिष्णुनी स्वप्नावस्था आकर बलात उसके केश खींचने लगी और अन्त में उसे आसन पतिता बनाकर स्वयं सिंहासन में बैठ गई, वह तेजस् विभु की साम्राज्ञी स्वभाव से अचञ्चल न होने के कारण जब इधर-उधर करवटें बदलने लगी तभी एक सुन्दर मनोरम दृश्य का दर्शन सिद्धि की आत्मा को सूक्ष्म मन व सूक्ष्म इन्द्रियों के सहारे होने लगा।

स्वप्न के आकाश में स्थित आपश्री के भगिनी-भाम अनन्त सूर्यसम-प्रभ तेज से दशों-दिशाओं को तेजोमय बना रहे थे। कोटि-कोटि शारदीय पूर्णचन्द्र की सुन्दरता, प्रियता, सुधा-सरसता, उनके अलौकिक मुख मयंक के आगे तिरस्कृत हो रही थी। काय-वैभव का सर्वभावेन भरा लहराता हुआ महासागर सबको आत्मसात् कर रहा था। नेत्र उन अप्राकृत अनाख्येय, अनुपम और असमोर्ध्व युगल मुख मयङ्कों का दर्शन करने में सक्षम

न होकर झँप गये किन्तु कुछ क्षणों के पीछे उनमें कहाँ से क्षमता आ गई, प्रतीति होती है कि वह उन्हीं के कृपा-वैभव का चमत्कार था। हृदयहारिणी युगल मूर्तियाँ परस्पर कुछ वार्ता करती हुई-सी ज्ञान का विषय बन रहीं थी, उसी सन्दर्भ में राम ने कहा—"प्राणेश्वरी सीते! ये युगल दम्पति सिद्धि, लक्ष्मीनिधि नामक नवल पर्यङ्क पर सोये हुये भी ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे वेद वर्णित वेद-सार-सिद्धान्त (रसो वै सः) की प्राप्ति सर्वभावेन हो गई हो इन्हें।

"प्राणेश्वर! आज सिद्धि के सौभाग्य रजनी मनाने की प्रथम रात्रि है किन्तु दम्पति का आश्चर्योत्पादक अमल सिद्धान्त कितना प्रबल है कि जिसके सम्मुख भव-रस की सीकर बिन्दु का भी विनाश उसी प्रकार हो गया है जैसे गरम अग्निमय लोहे में पड़ने से, पानी की अल्प बिन्दु का। इनको 'रसो वै सः' की उपलब्धि होना, आपके अकारण कृपा-वैभव की संकल्प प्रक्रिया के साक्षात् स्वरूप से है।" राम वल्लभा ने कहा।

"प्रिये! ये दोनों अहं विहीन अपने को हम दोनों से अतिरिक्त नहीं जानते हैं, अतः हम दोनों भी अपने को इनसे अन्य नाममात्र नहीं जानते, तभी तो हम दोनों, इन दोनों की आत्मा हैं और ये दोनों हम दोनों की आत्मा हैं, अर्थात् जो ये हैं, सो हम हैं और जो हम हैं, सो ये हैं। हम दोनों और इन दोनों में सदा भेद का अभाव है किन्तु रस वैचित्रीय-आस्वाद-अनुभूति के लिये दो मिथुन जोड़े का दर्शन स्व-संकल्प का साक्षात् स्वरूप है।"

"आपश्री की अभिन्नात्मा स्वरूपा शक्ति सीता से यह अविदित नहीं है, जानकी-वल्लभ! आपश्री का संकल्प हुआ था कि श्याल-सरहज का सच्चा सुख लेने के लिये जिसका प्रकार यह था कि धराधाम में हम दोनों दशरथनन्दन, जनकनन्दिनी के रूप में अवतार लें और हम ही दोनों स्वांशभूत मिथिलाधिप नन्दन, श्रीधर नन्दिनी के रूप में आविर्भूत हो तदनुसार सत्य संकल्प का संकल्प उनकी इच्छा शक्ति से ही साकार हो गया है। अहह! इन दोनों की सुषुप्ति दशा का दर्शन अपने दोनों से भिन्न नहीं प्रतीत हो रहा है, कैसा मनोरम उपयुक्त स्थान है यह हम दोनों के विहार के लिये।"

"प्रियतमा का कथन सर्वथा सत्य से संश्लिष्ट है अतः हम लक्ष्मीनिधि में और आपश्री सिद्धि में प्रवेश कर तद्भाव से भावित हो जांय और अपने मूल स्वरूप से आप, भ्राता-भाभी के और हम श्याल-सरहज के सेवा

सुख की अनुभूति करें।" जय हो रसिकाधिराज हमारे प्राणवल्लभ जू की! कहकर आपकी अनुजा ने आपके भाम का अनुमोदन किया तदनन्तर सीता-कान्त आप श्री में और श्री सीता इस सिद्धि में प्रवेश कर गईं तत्पश्चात् जाग्रत अवस्था आने पर स्वप्नावस्था का तिरोधान हो गया और आपकी सिद्धि स्वप्न जनित दृश्य से प्रभावित हर्ष और प्रेम के चिह्नों से युक्त होकर, अपने में एक वैलक्षण्य एवं विशिष्टताओं की विद्यमानता का अनुभव करने लगी, कृपा-सिन्धु के कृपा-कोर की जय हो, जय हो।"

"प्रिये! आप जैसे दृश्य का दर्शन उस रात्रि को आपके वल्लभ को भी हुआ था, स्वप्नावस्था में। उसकी प्रकार-प्रक्रिया आपके दर्शन से अभिन्न थी, क्योंकि देश-काल, दृश्य और दृश्य के अभिनायक एक थे। अब हम दोनों को कभी अहं और मम् का स्वप्न भी नहीं देखना चाहिये, न हम हैं न हमारा, जो कुछ है वह सीता और राम हैं और उनका शेष भोग्य और रक्ष्य है।"

स्वप्नकाल की राम-कथा परस्पर श्रवण कर, दोनों आराध्य कृपा के अनुसंधान में खो गये पश्चात् लक्ष्मीनिधि जी पुनः प्रियामुख से अपने प्रिय की प्रेम कहानी श्रवण करने के लिये उत्साहित होने लगे।

× × ×

३३

सासु का सुनयनासदन नयनानन्दवर्धन सर्वभावेन सिद्ध हो रहा था, विधिविस्मायक वहाँ की कला कुशलता भव्य भवन की एक-एक कनक खची ईटें, कुशल-कलाकार के कौशल्य का सचित्र चमत्कारिक प्रमाण पत्र, संसार के सम्मुख समुपस्थित-सी कर रही थी। वैदूर्यादि मणि-माणिकों की पच्चीकारी का नैपुण्य, स्वर्ण में सुगन्ध के योग का कार्य कर रहा था, वहाँ सभी प्रकार की सुख-सुविधाएँ शची और शचीपति के मन को मलीन बना रही थीं क्योंकि इन्द्र-भवन का नक्षत्र, सीरध्वज के सदन-चन्द्र के सम्मुख अतिलघुता से युक्त तेजहीन सहज ही प्रतीति का विषय बन रहा था। सुनयना-सदन के दासी-दास भी सुर-पुर एवं विधि-पुर के निवासी नर-नारियों के शरीर-सौन्दर्य, सुख-सुकृत और शील-गुण को अति निम्नस्तर का-सा प्रकट करने में सक्षम हो रहे थे।

प्रथम-प्रथम श्वसुर पुर में आई हुई, पति-प्राणा सिद्धि को, उक्त भवन में अपने सासु का अप्रतिम आदर एवं लाड़-प्यार इतना अत्यधिक प्राप्त

हुआ कि जिसका अनुमान करना गगन-तारिकाओं के सदृश सामर्थ्य से परे है, प्यार का लाक्षणिक ज्ञान यह अवश्य है कि सासु की पुत्र-वधू अपने माँ के प्यार से, सासु का स्नेह अधिक वजनी प्राप्त कर, माँ व माइके के विरह-जनित कष्ट को भूल गई थी। ननँद किशोरी मैथिली की प्राप्ति एवं उनके अप्राकृत स्नेह की सुलभता ने श्रीसीता की भाभी को पूर्ण मनोरथा बनाकर सिद्धियों के सिंहासन में स्थित कर दिया था सदा-सदा के लिये। दोनों भाभी ननँद परस्पर वियोग की असहिष्णुता से सुनेत्रा-सदन में ही, सासुजी के कथनानुसार एक सुन्दर स्वर्ण विनिर्मित पर्यङ्क पर सो गई थीं उस दिन। अहह! परस्पर का 'पूर्वराग, अनुराग में परिवर्तित होकर, दोनों को महाभाव के पीठ पर प्रतिष्ठित करने को समुत्सुक हो रहा था। अहो! परस्परीय आलिङ्गन-चुम्बनादि प्रेम प्रक्रियाएँ निद्रा देवी को दोनों के दर्शन से वञ्चित करने में सहज समर्थ हो रही थीं, आनन्द का अपरिमेय अम्भोधि दोनों के देह-इन्द्रिय-मन और बुद्धि को अपने में आत्मसात करके अपने में अपने स्वभाव से अठखेलियाँ खेल रहा था, आनन्द! आनन्द!! आनन्द!!!

प्रेम के प्रभाव से दोनों उठकर पर्यङ्क पर बैठी हुई अपनी मुसुकनि-चितावनि एवं प्रेम परिलसित सात्विक भावों से भावित परस्पर आकर्षक सिद्ध हो रही थीं, मनसागोचर स्थिति युगल-मूर्तियों को प्राप्तकर कृतार्थ हो रही थी। वैदेही के दर्शन की चिर अभिलाषा आज साकार हो गई, सिद्धि के सौभाग्य को सुमेरु गिरि के शिखर-सदृश समुन्नतशील बनाकर, उसने सीताग्रज की वधू एवं भूमिजा के भाभी पद पर प्रतिष्ठित कर दिया है। अहो! सीता जिसे भाभी-भाभी कहकर उसके अङ्गों में लिपटने व अङ्क में बैठने से असीमानन्द की अनुभूति करे, वह क्या सभी सुर ललनाओं से, स्पृहणीय न होगी? मैं तो समझती हूँ कि वह उमा, रमा ब्रह्माणी के सौभाग्य को भी विलज्जित करने में सहज ही सक्षम होगी। क्यों, लाड़िली जू! आज आप अपनी भाभी के आनन्द का अनुमान कर रही हैं न? कि समुद्र जैसे सूर्य-रस्मियों द्वारा जल खींचे जाने पर भी अपने में अभाव नहीं पाता, उसे क्या पता कि मेरी जल राशि का अल्पांश सूर्य-किरणों में प्रतिष्ठित होकर, सम्पूर्ण संसार को ससि-सम्पन्न बना रहा है, अनन्तानन्त जीवों को जीवनदान दे रहा है और प्राणियों के प्राणों को पुष्ट कर रहा है, वैसे ही आनन्दार्णवा आप श्री को भी यह न मालुम पड़ता होगा कि हमारी आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक काय सम्पत्ति का अल्पांश सिद्धि ही क्या समस्त प्राणि-समूहों के जीने का सहारा है। हाँ! सिद्धि को

सर्वाधिक सीता के दर्शन-स्पर्शन-सेवन-स्नेह एवं सम्बन्धजनित सत्य सुख की सम्प्राप्ति स्वयं श्री की कृपा देवी ने करा दिया है, जो भाग्यैश्वर्य-भाजना विशेषण, वैदेही की भाभी के नाम के पहले लगाने का मूल कारण है। अहा हा ! क्या से क्या हो गई ? कहाँ से कहाँ पहुँच गई ? और किससे किसकी हो गई ? क्या पा गई, सर्वसाधारण की बुद्धि का विषय नहीं, जो उक्त वार्ता का अनुभव कर सके।

अहो ! भाभी के भाव-सिन्धु की उर्मियाँ, उर्विजा के उरवर्ती-प्रान्त उछल-उछलकर, उसको अपार अम्भोधि में अस्त करने में सर्वभावेन समर्थ सिद्ध हुई हैं, तभी तो सीता सिद्धि के आकार की हो गई है। बिना देह की वैदेही को अपनी भाभी के देह में रहने का अनुपम आवास प्राप्त हो गया है, जहाँ सर्व-भाँति स्वरूपानुकूल आनन्द की साधन-सामग्रियाँ, निजानन्द की उपलब्धि के साथ असाधारण सम्प्राप्त हैं अतएव सीता को सिद्धि-सदन में बिहार कर-करके, स्वयं के सुख का अर्जन करने में किसी आपत्ति को आड़े आते न देखना पड़ेगा। भाभी कमाये और भइया की भगिनि बैठे-बैठे खाय। अहह ! कितना आनन्द अपनी भाभी के ननँद को। उमा, रमा, ब्रह्माणी को सीता की जैसी भाभी और भइया की सम्प्राप्ति दुर्लभ है अतएव अवनिजा जैसा आनन्द भी उन्हें अप्राप्य है, जिस आनन्दार्णवा की समस्त सम्पत्तियों को लोक के जीने का कारण बताकर, आपने बहुत से विशेषणों के अलङ्कार पहनाये हैं, वह सर्वथा स्वयं आपकी नियत वस्तु है अतएव आपके अधिकार में है इसलिये वस्तु का सर्वस्व वस्तुमान का है, सीता का सत्य संभाषण सिद्धि के सहज स्वार्थ-परमार्थ की प्राप्ति का सच्चा साधन और साध्य है, आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

"भाभी जी ! सीता की हथेलियों को स्व के करतलियों में रखकर प्यार कर रही हैं। आप ! बताइये दोनों की गदेलियों-करजों, मणिवन्धों तथा आङ्गुल्यादि आभूषणों में क्या अन्तर है ? सर्वभावेन सूक्ष्म दृष्ट्या बारम्बार विचार करके प्रश्न का समीचीन उत्तर आपकी ननँद को सम्प्राप्त होना चाहिये।"

"आश्चर्य ! भाभी-ननँद के भूषण-भूषित हाथों में विचार करने पर कोई भेद प्रतीति में नहीं आ रहा है, जिससे यह निर्णय लिया जा सके कि यह कर-कमल सीता का है और यह सिद्धि का। अहो ! कक्ष-भीति पर सुसज्जित दर्श-संस्थित उक्त दोनों के युगल प्रतिबिम्बों में भी कोई अन्तर नहीं दृष्टिगोचर हो रहा है। जब सीता और सिद्धि में ईश-जीव के समान

स्वाभाविक भेद स्वयं सिद्ध है तब दोनों के काय-वैभव में भी दिव्य-अदिव्य अपरिणामी-परिणामी और अप्राकृत-प्राकृत आदि का भेद होना सहज है किन्तु आश्चर्य! सर्वभावेन एकता ही प्रतीत हो रही है दोनों में। कौन ननँद है, कौन भाभी कोई अनिश्चय-नदी को पार करके निश्चय के स्थिर किनारे पर नहीं खड़ा हो सकता, हाँ! वैवाहिक मंगलमय चिह्नों को देखकर वर्तमान में भले सीता व सिद्धि को अपने ज्ञान का विषय बनाया जाय परन्तु वैदेही-विवाह के पश्चात् मांगलिक-चिह्नों की एकता होने से सहसा दोनों में भेद का ज्ञान किसी की बुद्धि व दृष्टि का विषय न बनेगा", सिद्धि कुँवरि ने आश्चर्य चकित कहा।

"दर्श-संस्थिता दोनों देवियों की सर्वथा एकता सिद्ध करने के लिये यह चमत्कारिक दृश्य किसी आपकी हृदयस्थ अचिन्त्य शक्ति का संकल्प साक्षात् होकर, दृष्टि-पथ में आ रहा है अन्यथा भाभी-ननँद में, वय, रूप, गुण, स्वभाव का अन्तर होना आवश्यक है और होना चाहिये। लगता है हम दोनों को दो तन होते हुये भी एक मन, एक बुद्धि, एक आत्मा, एक इच्छा और एक सुख हो जाने की शक्ति व प्रेरणा प्राप्त हो रही है, किसी आज्ञात् एवं अदृश्य शक्ति से, अतएव उक्त दोनों को उसी स्थिति में स्थित हो जाना चाहिये जो प्रथम-मिलन की बेला में परस्पर प्रेम-भेंट का आदान-प्रदान होगा। कहिये.........वैदेही का मन्तव्य श्रीधर-कुँआरी के मन को अनुकूल लग रहा है या नहीं?"

"अहो! ननँद का यह प्रश्न सार्थक है। लगता है कि सिद्धि के सर्व-समर्पण में शुद्धता का योग नहीं है अन्यथा सीताग्रज की अनुजा का कथन इस प्रकार का न होता क्योंकि सीता-समर्पिता सिद्धि का पारतन्त्र्य वैदेही को उक्त कथन करने से रोकता, हाय! सीता की भ्रातृ-वधू के अन्तःकरण में अवश्य अन्तर्भुक होकर, स्वातन्त्र्य अपना आसन जमाये बैठा है, धिक्कार! धिक्कार!! सीता के भाभी पद पर प्रतिष्ठित होने की योग्यता इसमें कदापि न थी किन्तु कृपार्णवा किशोरी की कृपा ने बलात् निम्नासना को सर्वोच्च आसनाधिकारिणी बनाकर के ही विश्राम लिया। साश्रु सिद्धि कुँअरि अपने को सोचती हुई, विस्मृति की शय्या में सो गईं......प्रकृतिस्थ होने पर.....।

"अहह! भ्रातृ-वधू का अपने पति की अनुजा पर कितना अपार स्नेह है, इनका सर्वसमर्पण कितना विशुद्ध है, जिसमें अहं और मम के बीज

का नाम निशान न होने से स्वार्थ और परमार्थ की माँग नहीं, इच्छा है तो एक वह है ग्रहीता के मङ्गल की कामना तथा तत्सुख-सुखित्वम् की भावना से अतिरञ्जित मन की कैङ्कर्य कामना। प्रथम दर्शन की बेला में ही भाभी के आत्म-समर्पित भावों का दर्शन, उनकी ननँद को भली-भाँति हो गया था अतएव उसे भ्रातृ-वधू के हृदय के विस्तृत कोष में असमर्पित किसी वस्तु का आंशिक दर्शन पुनः-पुनः अन्वेषण करने पर भी अप्राप्त रहा। वैदेही का अपनी भाभी के प्रति उक्त कथन व्यवहारिक शिष्टाचार के आग्रह से हुआ है क्योंकि प्रेमी-प्रेमास्पद में अद्वैत होते हुये भी, बिना द्वैत के प्रेम-प्रक्रियाओं का दर्शन, अन्तर्हित रहने से, अन्तःकरण एवं पंचज्ञानेन्द्रियों का विषय न बन सकेगा, भाभी जी !''

''सुनयनानन्दवर्धिनी जू के वाक्-विसर्ग में किंचित अन्यथा का अंश न मिलकर किसी छिद्रान्वेषी आलोचक के अन्वेषण करने पर भी शून्य ही उसके हाथ लगता है। भूमिजा जू की भाभी ने तो अनुसंधित नैच्य एवं जीवत्व भाव से भावित भाव में भरकर, अपने सर्वस्व समर्पण में शंका के बन्धन से बुद्धि को बाँधने का प्रयत्न किया है, जिससे जीव की जीवनी जानकी को अपनी 'अहैतुकी कृपा वश आश्वासित करने का कष्ट करना पड़ा।'' आनन्दवर्धिनी ननँद की दृष्टि से दृष्टि मिलाकर लाड़-प्यार करती हुई सिद्धि कुँअरि ने कहा।

''वैदेही के भ्रातृ-वधू का दर्शन सीता को दर्श-संस्थित अपने प्रति-बिम्ब के समान सर्वभावेन अपने से अभिन्न प्रतीत होता है, अभी कुछ समय पहले भाभी को देखते-देखते, उसे भूलकर सीता को लगा कि एक मात्र वह ही पर्यङ्क पर बैठी है, कुछ क्षणों के पश्चात् दोनों को परस्पर हृदयाबद्ध देखकर खोई हुई भाभी को वह प्राप्त कर पाई थी।''

''अहह ! सिद्धि के सौभाग्य का सीमाङ्कन करना शेष-शारदा के वक्तृत्व शक्ति का अविषय ही रहेगा। अहो ! अपनी जगतवन्द्या जानकी जिसे अपने से अपृथक सर्वभावेन देखती हों तथा जिसके बिना अपने को अभावग्रस्त पाती हों, उस सीता की भाभी के भाग्य की तुलना किसी मृत या अमृत लोकों के श्री सम्पन्न नर-नारियों के साथ करना औचित्य का अनादर ही होगा क्योंकि उक्त लोकों के श्रीमन्तों की श्रीमन्तिनियाँ अपने कर्मानुष्ठान के परिणाम से प्रभावित हैं किन्तु सिद्धि तो केवल कृपा-सिन्धु पुरुषोत्तम भगवान एवं उनकी अचिन्त्य तथा अभिन्न स्वरूपा शक्ति की कृपा से पली-पोसी किंकरी है अतएव उसका वैशिष्ट्य व वैलक्षण्य अपने आराध्य

के मंगलानुशासन के लिये, स्वरूपानुकूल होना स्वरूपगत धर्म है, यथा राजा के अनुकूल राजा के वस्त्र-भोजन-भवन-आसन-सेवक सम्बन्धी और सवारी होना, उसके गौरव की सुरक्षा के लिये अनिवार्य है क्योंकि वस्तुमान के आनुगुण्य वस्तु न होना, पराभव का परिचायक है, जिसका अनुभव लोक-वेद में भली-भाँति सभी सुर-नर-मुनि सामुदाय किया ही करते हैं।''

'तभी तो जननि-जनक को अपने अनुरूप पुत्र-वधू की, भूमिजा के भइया को भार्या की, उनके भगिनी को भाभी की अपने अनुरूप प्राप्ति सुख के सिन्धु में समाविष्ट करने वाली सहज सिद्ध हो रही है। अहह ! निमिकुल-निमिपुर-निवासी नर-नारी सुख-सुषमा सौभाग्य के अपार अम्भोधि हो गये हैं, श्रीधर-कुमारी सिद्धि को प्राप्त कर। अब उन्हें असिद्धियों के स्वप्न को कभी न देखना स्वाभाविक हो जायेगा, आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!''

अपनी लाड़िली अयोनिजा का अपने जन को आदर सम्मान प्रदान कर, उसे प्रतिष्ठा के शिखर में आसीन करना सहज स्वभाव है। सिद्धि को सीता की सम्प्राप्ति, नारकी को परमपद प्राप्ति के सदृश कहने में उपमेय का अनादर एवं संकोच का विषय बनकर शिर को निम्न रखने में बाध्य करता है। अब रात्रि शेष होने आ गई अतः आपश्री को सो जाना चाहिये, जिससे श्री मुख-पंकज के विकास में म्लानता का तुहिन न पड़े, ठीक है न ?''

''अपनी भाभी से गले लगकर.........अच्छा ! अब हम दोनों लेट जाँय। पड़े-पड़े हृदयाबद्ध होकर प्रेम शय्या के सुख की अनुभूति करें।''

शय्या में पौढ़ी दोनों राजकुमारियाँ तिरसठ के अंक के समान दृष्टि-गोचर होने लगीं। दो से एक और एक से दो हो-होकर, प्रेम की साक्षात् मूर्तियाँ प्रतीत होने लगीं, कुछ समय के अनन्तर तन्द्रा में स्थित होकर, साकेत धाम संस्थित नित्य चिन्मय स्वरूप की स्थिति प्राप्त कर, चिन्मय-लीला का स्वप्न दोनों दर्शन करने लगीं।

अमृतानन्द का अनुभव जागने पर, एक-दूसरे से कह-कहकर, भाभी-ननँद की सम्बन्ध नित्यता की परिपुष्टि करने लगीं।

इस प्रकार सिद्धि कुँवरि ने, श्रीसीता-जू के प्रथम दिन की प्रथम भेंट की कहानी सुनाकर, श्री सीताग्रज को सिद्धि-मुख से और-और कथा श्रवण करने की जिज्ञासा को उन्नत बना दिया।

× × ×

३४

गोधूलि बेला मंगलमयी बेला है, जहाँ न दिन है न रात्रि; न प्रकाश न अन्धकार, न पढ़ना है न पढ़ाना। संभव है, ये लक्षण परमपद स्वरूप परमात्मा में भी पाये जाते हैं, सुरगण सहायक-असुर विनाशक प्रहलाद-पति नृसिंह भगवान के जन्म की तो यह पावन बेला है ही, जिससे इस मंगलमय समय की महिमा का स्मरण, सभी के हृदय-देश से आसुरी अधिकार को निष्कासित करके, दैवी साम्राज्य की स्थापना करता है, राम नाम की महिमा एवं राम भक्तों की महानता का विस्तारक गोधूलि काल भक्तों की भावना तथा श्रद्धा-विश्वास को उच्चतम बनाकर, भक्ति पथ में अग्रसर करने का कार्य करता है।

इसी मधुरिम बेला की सुहावनी स्थिति में, यह सिद्धि नाम की सेविका, श्याम और स्वर्ण वर्ण के दो कमल स्व कर में लेकर, एकान्त सिद्धि-सदन की सुन्दर भव्य-नव्य वाटिका में बैठी, युगल कमलों के माध्यम से तद्वर्णों के आकार स्वरूप में, अपने आराध्यों में खोकर चित्त प्रदेश में उन्हीं का चिन्तन नेत्र झांपे कर रही थी, प्रेम-चिह्नों से चिह्नित तज्जनित आनन्द का अनुभव विभोर बनाये था, अन्य स्मृतियों के अभाव ने भावनास्पद आराध्यों के अप्रतिम माधुर्य महोदधि में आत्मा को डुबकियाँ लगाने में सहायता पहुँचायी।

अन्तर पाकर किसी बाला के कोमल-कोमल युगल कराब्जों ने, श्री सीता की भाभी के मिलित युगल नेत्रों को ढक दिया अतः वह अचानक इस स्थिति की वियोगिनी बनकर बुद्धि-प्रदेश में स्थित हो गई हैं! किसने ध्यान-मग्ना अपने ननँद-ननदोई के संयोग स्वरूप सिंहासन में बैठी हुई, अबला को अपने कर-कमलों से उसकी आखें झाँपने की क्रिया के द्वारा पृथ्वी पर पटक दिया है? अहो नेत्रों को ढाकने वाले पाणि-पद्म तो बड़े ही कोमल प्रतीत हो रहे हैं, लगता है, इनका वर्तमान क्रिया-कलाप इन्हें कष्ट प्रदान करने का विषय न बन जाय क्योंकि भृकुटी की कठोरता एवं बरौनियों की शुष्कता कराब्जों को दुख देने में दया का दर्शन न करायेगी।

"क्यों किशोरी जू के कर-कमल हैं ये? कि उनकी चन्द्रकला, चारुशीला आदि सखियों के? नहीं-नहीं, अन्य के पाणि-पंकज नहीं हो सकते ये। अहा हा! कैसी तरुण-अरुण अरविन्द की सुरभता घ्राण रन्ध्र से प्रवेश करके, सिद्धि को सीता के स्वरूप की स्मृति से संपूर्णतया युक्त करके, आत्म-

विस्मृति की शय्या में शयन कराने में सक्षम हो रही है। अरी लाड़िली जू! आपकी भाभी जान गई कि उसकी ननँद ने ही अपनी भ्रातृ-वधू के लोचनों को, अपने लाल-लाल, कोमल-कोमल कर-कमलों से आच्छादित करके कुछ अपने अभीष्ट सिद्धि के लिये लीला की है।

लोनी-लोनी अपनी लली जू स्वयं अपने भाभी के भाग्य-वैभव की विधायिनी एवं विस्तारिका हैं अतएव उन्हें अपनी भ्रातृ-भार्या से कुछ पाने की न आशा है न आकांक्षा किन्तु सिद्धि के सुख-संवर्धन के लिये, उसकी ननँद का यह निर्मल निष्प्रयोजन व्यापार है, जय हो हमारी लड़ैती जू की! जय हो उनके सुन्दर सुखकर समीचीन स्वभाव की।

किशोरी जू! अपनी भाभी की आँखों से अपने कराब्जों की यवनिका पृथक कर, उसे अपने आनन्द प्रदायी चन्द्रानन की सुधा पूर्ण किरणों के दर्शन का दान देने की दया करेगी, हमारी ललित लड़ैती जू बहुत अच्छी हैं, वे अपने भाभी के मन के अनुकूल चेष्टा करके ही सुखी होती हैं, भाभी से उनको अपने अभिमत देय को प्राप्त करना, रखी हुई अपनी वस्तु को उठाकर, अपने कर में ले लेने के सदृश ही होगा।

लीजिये, भाभी की ननँद ने अपनी भ्रातृ-वधू के स्व-पर को पहचानने वाली आँखों से अपने कर की यवनिका को हटा लिया अब तो किसी आपत्ति का सामना वैदेही की भाभी को न करना पड़ेगा बहिर्मुखी नेत्रों की वृत्ति का परिशमन कर, अन्तर्मुखी वृत्ति में विहरने वाले अन्तर नेत्रों को ज्योति प्रदानकर देना सीताग्रज की अनुजा की अनुकम्पा का मात्र परिणाम है यह, अन्यथा बाह्य नेत्रों का निर्विघ्न खुले रहना भी अन्तर नेत्रों के अभाव में अन्धतम की स्थिति के सादृश्य से पृथक नहीं है लाड़िली जू! स्व और पर के द्वैत जनित अहं—मम और राग-द्वेष को उत्पन्न करने वाली बाह्य दृष्टि, परमार्थ से भ्रष्ट करने हारी सहज सिद्ध होती है अतएव सिद्धि के ननँद ने अपनी भाभी की बाह्य दृष्टि को, अपने पाणि-पल्लवों के पात्र से ढककर तथा तद्शक्ति को परमार्थ-पथानुयायी अन्तः इन्द्रियों की बलवती सहायिका बनाकर, उन्हें परमात्मानुभव करने का उचित उपाय किया है, जय हो हमारी प्यारी दुलारी प्राणाधिक प्रियतरा विदेह वंश वैजयन्ती जू की! जय हो ...... जय हो!

कहिये, श्री राजकिशोरी जू! आप श्री अपनी भाभी के समीप, उसके नाम की कौन सी वस्तु को, अपने ज्ञान का विषय बना रही हैं? यदि

आपकी भाभी के ज्ञान में यह आ जाय कि उसके पास अहं और मम के दोष से दूषित, अपनी नाम की कोई वस्तु शेष है, जिसमें सिद्धि के ननँद का अधिकार नहीं है, तो विहित प्रायश्चित करके उस वस्तु को भी सीता-ग्रज की सीता के चरणों में अविलम्ब सहर्ष समर्पित करने को, वह सर्वभावेन समुत्सुक है।

अहो ! अपनी दुलारी दीनानुकम्पिनी वैदेही जू अवश्यमेव कृपा करके अपनी अङ्ग भूता भाभी से स्व सुखार्थ कुछ कैङ्कर्य लेने की आज्ञा प्रदान करेंगी। कहिये, लाड़िली जू ! भाभी अपनी प्रिय ननँद का कौन-सा रुचिकर कैङ्कर्य करे अन्यथा कैङ्कर्य करने का संकल्प करके, आपसे सिद्धि की आँखों को खुली हुई देखकर भी उसे पूर्ण न करने का पाप-परिणाम भोगना पड़ेगा।

"सीता की भाभी के समीप जो कुछ भी उसके सहित उसका है, वह सर्वभावेन निःसंदेह उसकी ननँद का है किन्तु स्वकीय सुख सुविधा से लिये, अपनी वस्तु के स्वेच्छानुसार उपयोग करने से ही, वस्तु की सार्थकता सिद्ध होती है तथा उसमें नित-नित नये-नये निखार का होना, दृष्टि-पथ का विषय बनता है अतएव श्री श्रीधर कुँवारी के नेत्र मीलित करने में उसकी ननँद को सुख लगा। उसका बाल-विनोद स्व के सहित सिद्धि को सुख के सिन्धु में समवगाहन कराना है, छोटे बच्चे अपनी माँ की आँखें मूँदकर, माँ के सहित स्वयं सुखी होते हैं तथा माँ से मनचाही कुछ वस्तु लेकर उभ-यात्माओं को सुखी करते हैं, तदनुसार आज भूमिजा भी, अपनी भ्रातृ-भार्या से कुछ लिये बिना न रहेगी।" भाभी की क्रोड़ में बैठकर लिपटी एवं प्रेम-प्रक्रियाओं को करती हुई वैदेही ने कहा।

"लाड़िली जू ! आपकी भाभी कब से समुत्सुक है कि वह अपनी ननँद की वस्तु को, किशोरी जी की आज्ञा होते ही, उनकी सेवा में उपस्थित करने का कैङ्कर्य-लाभ प्राप्त कर धन्य हो जाय अतएव आप श्री अविलम्ब अपनी अभिमत सेवा कराने का अवसर उसे प्रदान करें, जिससे उसके सुख का सरोवर लबालब भरकर उछलने लगे।"

[भ्रातृ-वधू की वार्ता सुनकर······ चितवनि मुसकनि युक्त मुखचन्द्र से सुधा की वर्षा करती हुई मधुर-मधुर वाणी से]

"भाभी जी ! वैदेही-बन्धु के कैङ्कर्य करने का कौशल्य भ्रातृ-भार्या में जो दृष्टिगोचर होता है, वह अन्यत्र अप्राप्य है, पति-प्राणा तद्मन मनष्का पतिव्रत धर्म की साक्षात् मूर्ति एवं भगवत-भक्ति परायणा प्रेम-विग्रहा,

सदाचार-संग्रहालया, गन्धर्व विद्या-विशारदा, योग विद्या विभूषिता, सर्व सिद्धि-समन्विता, अपहत पाप्मादि अष्टगुण मंडप-मण्डिता आदिगुण गरिमा विशिष्ट सीता की भाभी का काय-वैभव भी अप्रतिम और अनाख्येय है क्योंकि ब्रह्मा के सृष्टि-संग्रहालय में, ऐसी असमोर्ध्व मूर्ति के स्थापना की पुनरावृत्ति आज तक नहीं हुई एवं प्रकारेण निमिकुल-वधू की प्राप्ति, विदेह वंश की विभूति बनकर, उसे प्रातिष्ठा के शिखर पर बैठाने की हेतु तथा जगत को आत्म-ज्योति जगाने में सहायिका सिद्ध होगी, मैं, भइया, दाऊ और भइया, सीता की भाभी की प्राप्ति, भगवत-कृपा-प्रसाद का महाफल जानकर, अपने किसी पुण्य-समूहों एवं भाग्य-वैभव का चमत्कार नहीं स्वीकार करते।''

''अपने आत्माधार की अनुजा का सिद्धि को श्रेष्ठ गुणगणालया कहना, उनकी भाभी को कम्पित वदना बना देता है, वह भय से भर जाती है, लगता है उसे, कहीं अहं का पिशाच शिर पर सवार होकर बोलने न लगे। वैदेही जू को जो उसमें दृष्टिगोचर होता है, वह उसका नाममात्र नहीं है, वह तो सर्वभावेन ललित-लड़ैती सिया जू का है। सिद्धि नामक दर्श में श्री सिया जू स्वयं के प्रतिबिम्ब को देखकर, उसे सिद्धि के अन्तर्भुक आरोपित करती हैं, जिससे उनकी भाभी भयभीत होकर, उन्हीं ननँद के शरण में पड़कर त्राण पाना चाहती हैं। अच्छा, जाने दें इस विषय को ! हमारी किशोरी को अपनी भ्रातृ-वधू से क्या माँगना है उसके नेत्रों को खोल देने के उपलक्ष में। आपश्री कुछ कह नहीं रही हैं, मन्द-मन्द मुसकान से अपनी भाभी को केवल भुलावा दे रही हैं।''

''अच्छा है ! श्रवण करें सीताग्रज की सीता को चाहिये, अपनी भाभी सिद्धि कुँअरि का अंकासीन असमोर्ध्व लाड़-प्यार जो उनकी ननँद का आत्माहार सिद्ध होगा, अन्य प्रयोजनहीना निमिकुल नन्दिनी को अन्य कुछ न चाहिये कहिये,.........भूखी को भोजन मिलेगा, भाभी जी !''

''भाभी का सर्वस्व, स्वाभाविक उसकी ननँद सीता का ही नियत धन है, जिसका उपभोग स्वतन्त्रता के साथ धनी को करने में कोई विरोध उत्पन्न नहीं होता। प्रेम-विग्रहा श्री सिया जू के संकल्प से, उनकी भाभी सिद्धि कुँअरि के पात्र में तदर्ह प्रेमान्न भर जाय तो वह आनन्दातिरेक की स्थिति में स्थित होकर, अपनी ननँद को नित्य-नित्य, नव-नव भावों से भावित सुन्दर सुस्वादमय प्रेम-पक्वान्नों को पका-पकाकर जीवन-लाभ लेती रहे, कृत-कृत्य हो जाय, सुफल मनोरथा हो जाय। अपने ननँद-ननदोई तथा

निमिकुल नन्दन की कहलाने योग्य हो जाय। जय हो सुनयनानन्दवर्धिनी सीता जू के सत्य संकल्प की ! अहह ! भाभी रूपी अन्न की अन्नादिनी निमिकुल नन्दिनी ननँद जू की जय हो, सदा जय हो, जय हो।

(प्रेम मूर्च्छा को प्राप्त श्रीधर कुँवारी के सचेत होने पर ......)

"अहो हमारी भाभी के उच्चतम स्नेह का वृहत बन्धन साक्षात् सशक्ति परब्रह्म परमेश्वर को बाँधने में जब सर्वभावेन सक्षम है तब उसमें अपने भैया की भगिनि बँध जाय तो कौन आश्चर्य है ? आज मैं अपनी भाभी के अप्रतिम स्नेह को प्राप्त कर क्या नहीं पा गई ! सर्वस्व पा गई, अनन्त को अनन्त काल तक, इस प्रेमान्न का भोजन पर्याप्त ही नहीं अपितु यह अनन्त प्रेम की राशि अनन्त ही शेष रहेगी।"

ऐसी प्रेमभरी वाणी का विनियोग परस्पर करती हुईं, भाभी-ननँद प्रेमालिङ्गन में आबद्ध दो से एक हो गईं।

अपनी प्राणवल्लभा के मुख से अपनी भगिनि की अन्तर-कथा श्रवणकर श्री मिथिलेश कुमार प्रेम विभोर बन गये पुनः प्रकृतिस्थ होने पर सिद्धि मुख से कथा श्रवण करने के लिये समुत्सुक से जान पड़ने लगे।

× × ×

३५

श्रीधर कुँवारी के श्वसुर देव ने वात्सल्य रस से अभिभूत, अपनी पुत्र वधू की सर्व सुख-सुविधाओं का ध्यान रखते हुये, सर्वकाल-सुखावह यह देव विमानाकार स्वर्णिम सिद्धि-सदन बनवाया था जिसमें सर्व सिद्धियाँ एवं निधियाँ परिचारिकावत् शिरनत सम्पुटाञ्जलि, सीताग्रज की सहधर्मिणी के सम्मुख कैङ्कर्य करने का संकेत पाने की इच्छा से सर्वदा समुपस्थित रहती हैं। प्रकृतिप्रभा का चमत्कार एवं उस नटी के नर्तन क्रिया का नैपुण्य भव्य भवन के प्रत्येक आवरणों के अमर आरामों एवं बाग-वाटिकाओं तथा जलाशयों में विहार करने के लिये, सौरभ-सम्पन्न शरीर वाली सुर सुन्दरियों के मन को भी ललचीला बनाकर विवश कर देता है किन्तु स्वर्ग सुख को तिरस्कृत करता हुआ, यह भव्य भवन वैदेही के भ्रातृ-वधू को अपनी ओर आकर्षित करने में प्रारम्भ से ही असमर्थ रहा, अपने आराध्यों की अनुकम्पा से। मन की मही में एक आशा और आकांक्षा की वेलि आविर्भूत हो गई जो प्रतिदिन प्रवर्धित होती हई, अन्तःकरण के प्रान्त को अपने विस्तृत

वैभव से आच्छादित कर, वहाँ की साम्राज्ञी बन गई और अपने देश सम्बन्धित निवासियों को स्वबल से सर्वभावेन अधीनस्थ करके, उसमें उस क्षेत्र में अन्य के प्रवेश का निषेधात्मक नियम निश्चित कर दिया है। सिद्धों की गरुड़-गति जैसे गगन गामी विमानों को टकराने की भय वाले, सिद्धि-सदन के भव्य भवनों के स्वर्णिम नव खण्डों में विहारकर, उसका उपभोग करने वाले, सिद्धि-हृदय के कोष में स्थित परमधन श्री सीताग्रज, श्री सीता व सीतापति हैं, इस मधुलुब्धा भ्रमरी किंकरी का निवास, आश्रय-प्रदायक युगल किशोर-किशोरी के पादारविन्दों में होना स्वरूपानुकूल है। उनके अभयप्रदायक कराब्जों की छाया के छत्र के नीचे बसकर ही जीव सर्व सम्पत्ति से युक्त सुरक्षित रह सकता है। युगल मुखाम्भोजों की प्रसन्नता के लिये युगल-कैङ्कर्य में निरत रहना ही जीव का स्वभावगत धर्म एवं व्यापार है, अस्तु, सेव्य का सर्व विधि कैङ्कर्य जनित विकसित मुखाम्भोज ही सेविका का परम भोग्य है, उक्त मन की लता को प्राणनाथ पति परमेश्वर में अपने सदुपदेशों के जल से सींच-सींचकर परिवर्धित कर दिया है, अब उसे पुष्पित और फलित देखकर, सीताग्रज, सीता, सीताकान्त तीनों ने अपने अनुभव का विषय बना लिया है, इतना ही नहीं, रीझकर उस मन की फुलवारी को सिद्धि के अधिकार से पृथक कर अपने नाम, नामान्तरण करा लिया है तीनों ने। अब सिद्धि उसके योगक्षेम की चिन्ता के स्वप्न की दृष्टा भी नहीं बन पाती। निश्चिन्त हो गई, सर्वभोक्ता के भोगानुभव का आनन्द उनके मुखकमल को विकसित कर रहा है, दर्शन कर-करके सिद्धि के परमानन्द की आत्यान्तिक अनुभूति अनवरत अबाधित वरण किये रहती है, अतएव जब अपनी लाड़िली ललित किशोरी अपनी सखी सहेलियों के साथ सिद्धि-सदन के प्राङ्गण को अपनी विहार भूमि बनाकर क्रीड़न क्रिया करती हैं तथा तज्जनित श्रम को विश्रान्ति के रूप में परिवर्तित करने के लिये, अपनी भ्रातृ-वधू सिद्धि के अंक में आसीन होने का आश्रय दौड़कर ग्रहण करती हैं पुनः सस्नेह अङ्ग मालिका-स्पर्श एवं मधुरिम अधरारुण पल्लवों से मधुर-मधुर मुसकान को बिखेरती हुई, चित्तापहारिणी चितवनि से भाभी-भाभी शब्दों का अमृत घोल श्रवण-पुटों में उड़ेलकर, उससे प्यार पाने और स्व से प्यार करने की कामना से अभिभूत हो जाती हैं और सिद्ध मनोरथा होकर भी अतृप्ति का ही अनुसंधान किया करती हैं, तब सिद्धि व सिद्ध-सदन दोनों सर्वभावेन सिद्ध, कृतकृत्य, सफलमनोरथ और सर्वभावेन त्रिभुवन के स्पर्धा का विषय बन जाते हैं।"

[श्री वैदेही की भाभी सिद्धि कुँवरि, इस प्रकार स्वगत वार्ता का विनियोग करती हुईं ध्यानस्थ हो गईं तथा श्री सीताराम जी का दिव्य दर्शन, दिव्य सिद्धि-सदन के मध्य चिदाकाश में करने लगीं, आनन्द का अम्भोधि अपनी उत्ताल उर्मियों से चिदाकाश को आनन्दाकाश बनाने लगा, उसी स्थिति में]

"भाभी जी की भव्य भावनाओं ने, भैया के भगिनि-भाम को श्रीधर कुँवारी के हृदय से अन्यत्र न जाने वाला भूखा अतिथि बना दिया है अतः सिद्धि-सदन के मेहमान सिद्धि कुँवरि के उरस्थ अष्टदल कमल के मकरन्द पान से अतृप्त भ्रमर-भ्रमरी के रूप में वहाँ अष्टयाम गुंजन क्रिया करते हुये मेड़राया करते हैं, बाह्य-भाव में तो भ्रातृ-वधू की क्रोड़ और उनका सिद्धि-सदन ही मात्र, सीता की क्रीड़ा भूमि है इसलिये भाभी जी के भवन को अपना निजी भवन बनाकर ननँद का वहाँ रहना शान्ति सुख-संवर्धक सिद्ध होता है......"

[इस प्रकार ध्यान की वैदेही के वाक्-विसर्ग के पश्चात् ...]

"आप अपनी ननँद के संग अर्थात् गौर-तेज के साथ आये हुए, श्याम तेज को पहचानती हैं क्या ? यह वही है जिसे योगिवर्य याज्ञवल्क्य और देवर्षि नारद जी के कथनानुसार आपने अपना परम प्राप्य समझकर, परम भागवत् विदेह वंशावतंस श्री लक्ष्मीनिधि को आत्म-समर्पण किया था अर्थात् अपने पति परमेश्वर के सम्बन्ध से ननदोई के रूप में पाने की कामना की थी, अयोध्याधिपति चक्रवर्ती श्री दशरथ जी के पुत्र के रूप में अवतरित होकर, आपकी सरस सेवा जन्य आनन्द का उपभोग करने के लिये, मिथिला पहुँचने के दिनों को नित्य गिन-गिन कर कालक्षेप करना, दाशरथि राम की दिनचर्या हो गई है। सिद्ध-सदन की भावी कोहवर-केलि एवं श्याली-सरहज के सम्प्रयोग से संप्राप्त मधुर रस के आस्वाद का स्मरण राम के मन को मिथिला में रमण कराकर अयोध्या से निष्कासित कर देने में समर्थ हो गया है, विरह की वह्नि राम को त्रिकरण तपा तो रही है किन्तु भावी सरहज की रसमय सेवन-प्रक्रिया जनित सुख की आशा का नीर, उन्हें झुलसने से बाल-बाल बचा रहा है, सिद्धि के मन में उगी हुई आकांक्षा की हरी वेलि को पुष्पित तथा फलित बनाने का संकल्प, राम को निकटतम भविष्य में ही तिरभुक्त देश में बसी निमिनगरी के नयनों का विषय बनायेगा, ऐसी अपने मन की पूर्ण प्रतीति है। सीता सम्बन्ध से सिद्धि एवं सिद्धि-सदन का चमत्कार पूर्ण वैभव, वैदेही-वल्लभ को अपना अनुभव करा-कराकर,

वहाँ से एक पद अन्यत्र न जाने देने में सहज समर्थशाली होगा अतएव लक्ष्मीनिधि वल्लभा का मनोरथ साकार होकर सर्व मङ्गल-माङ्गल्य एवं सर्वलोक सुखावह सर्वभावेन सिद्ध होगा……।" ध्यान देश के श्याम स्वरूप ने कहा।

"विदेह वंश वैजयन्ती वैदेही के भ्रातृ-वधू को वैदेही और विदेहात्मज के दर्शन-स्पर्शन-सेवन और परस्परालाप से उनके बाह्याभ्यन्तर में रमने वाली वस्तु विशेष का ज्ञान, उनकी सेविका सम्बन्ध से हो जाय तो कौन आश्चर्य है ? जिस नित्यानन्द स्वरूप चिदात्मा में वीतराग भय-क्रोध अमलात्मा योगियों का मन नित्य एक रस रमण करता है, जो वेद-वेद्य है, जो चराचर विश्व का आत्मा है जो वेदान्तियों का परब्रह्म, योगियों का परमात्मा और भक्तों का भगवान है, वही परम प्रकाश स्वरूप सर्व ज्योतियों का ज्योति, प्राण का प्राण, श्रोत्र का श्रोत्र, चक्षु का चक्षु और मन का मन, बुद्धि का बुद्धि तथा जीव का जीव, मनसागोचर अद्वय तत्व दाशरथि राम सीताकान्त, सीताग्रज के सखा एवं सिद्धि कुँअरि के नयनानन्दवर्धन ननदोई आपश्री हैं। जय हो हमारे चिर अभिलषित रसिक राय रघुनन्दन राम की ! जय हो जगदानन्द सुनयनानन्दवर्धिनी, सर्व शोक संतापहारिणी, अनन्त ब्रह्माण्डकारिणी, विदेह तनया जू की जय हो, जय हो।"

[ध्यानावस्था की सिद्धि के कथनोपरान्त ··]

"लक्ष्मीनिधि-वल्लभा के ध्येय एवं ज्ञेय का ही साक्षात, ध्यान के देश में हो रहा है। अहो ! सीता की भाभी सिद्धि स्वयं सिद्ध हस्ता हैं, आश्चर्य ! उन्होंने चित्त के चारुतम करों से ध्यान की भीति पर कैसा मन-मोहक रँगीला-सजीला चित्र चित्रित किया है, जिसे देखकर चित्र का लक्ष्यभूत स्वतः सिद्ध—आदि स्वरूप भी मुग्ध होकर उसने जगत् के सामने मिथिला की मही में इस चित्र की अभेदोत्पादक सजीव प्रतिलिपि तैयार कर, उसे सबके नयनों का विषय बनाने का निश्चय कर लिया है, जिसे कतिपय काल में लोक मिथिला-बिहारी, सिद्धि-सदन बिहारी, कोहवर बिहारी के नाम से पुकारने में रसानुभूति करेगा। अहो ! अपनी श्वसुर पुरी के विस्मय उत्पादक वैभव के साथ श्वसुर, सास, श्याल-सरहज आदि सम्बन्धियों का प्रेम पूर्ण सादर स्वागत सम्मान प्राप्त कर, सीताकान्त नामक स्वयं सिद्ध चित्र सिद्धि-सदन से बाहर जाने के विचाराभास से संतप्त होकर असहिष्णुता का अनुभव करेगा अतएव वह श्याम भ्रमर, सिद्धि-सदन के कमल-कोष का पराग

पी-पीकर मधु-मत्त मेड़राता रहेगा मकरन्द के महल में। आनन्द·· ··· ¡ आनन्द··· !! आनन्द······!!! ध्यान देश की वैदेही ने कहा !

"अहो सिद्धि आज बिना साधना के सिद्ध हो गई, जिसका प्रमाण-पत्र, सभी वेद-शास्त्र, पुराण-इतिहास और स्मृतियों से प्रमाणित सर्वपर सर्वाधार, सर्वात्मा, सर्वेश्वर पुरुषोत्तम भगवान से प्राप्त हो चुका है अतः अब उसे स्वयं सिद्ध परमपद की प्राप्ति में कोई सन्देह नहीं है, वह साकेत पीठ प्रतिष्ठित श्री सीताराम जू के सर्व विधि कैङ्कर्य करने की योग्य पात्री बन जायगी तथा स्वयं की सेवा से विकसित युगल मुख-पङ्कजों को देख-देख कर परमानन्द की अनुभूति करेगी, आनन्द···········!·······आनन्द··· ····!!" ध्यानदेश की सिद्धि ने कहा।

सीताग्रज के भाम अपनी सलोनी सरहज की सरस सेवा से समुत्पन्न सुख की समनुभूति करने के लिये सर्वथा समुत्सुक हो चुके हैं अतएव सिद्धि से सर्मपित सिद्धि-सदन की सर्वसुख संधिनी सामग्रियों का सर्वभावेन समनुभव करने के लिये उनका ललचीला मन आतुरतापूर्ण त्वरान्वित होकर, उन्हें अविलम्ब मिथिला का मेहमान बनायेगा, आपश्री धैर्य धारण करें, अधिक भूख से प्रपीड़ित प्रपन्न को प्रेम-प्रक्रियाओं के साथ अनेक प्रकार के अनुपम अन्नों का परोसना, परोसने वाले को आत्यान्तिक आनन्द की अनुभूति कराने वाला सिद्ध होता है, क्षुधातुर स्वयं अन्नदाता की 'जय हो' कहता हुआ अन्न क्षेत्र में बिना बुलाये पाव पयादे पहुँचता है अस्तु चिन्ता न करें। सिद्धि से सर्मपित अमृतान्न को पाने के लिये सिद्धि के ध्यान का ध्येय और ज्ञान का ज्ञेय अतिथि सिद्धि-सदन के प्राङ्गण में प्रवेश करता हुआ दृष्टिगोचर होगा। सिद्धि-सदन के सिद्धान्न को अतृप्ति की आँखों से देखता हुआ, कितना-कितना पा लेने पर भी उसका पेट पीठ से चिपका रहेगा, अस्तु सीताग्रज की सहधर्मिणी के सुधा स्वादकर, अन्न पाने का लोभ संवरण न करके अभ्यागत अन्यत्र जाने का स्मरण भूल जायगा जिससे सिद्धि-सदन को ही, स्वयं का सदन समझने लगेगा। इस प्रकार अभ्यागत की सेवा करने वाले को नित्य सेवा का सुअवसर स्वयं सहज रूप से प्राप्त हो जायगा, बस ! आनन्द ! आनन्द ··· !! आनन्द···· ··!!!"····· ध्यान की सीता के कहने पर।

"अहो ! आराध्य की अकारण अपरिमित कृपा देवी ने सिद्धि को वरण कर लिया है, तभी तो सीता व सीताकान्त की अमोघ वाणी, श्रवण पुटों में पड़कर, सिद्धि को सुफल मनोरथा सिद्ध कर रही है। साकेत पीठा-

धीश्वर अपनी स्वरूपा शक्ति से समन्वित, निमिकुल-वधू को अपनी अन-पायिनी सेवा का सुअवसर उसकी अयोग्यता पर दृष्टिपात न करके दे रहा है। परम पुरुषार्थ एवं परमपरमार्थ की प्राप्ति बिना साधन व पात्रता के सिद्धि को सर्वभावेन हो जायगी बिना बीज वपन किये, सिद्धि के क्षेत्र की खेती अनन्त गुणा करके, त्रिभुवन के दृष्टि का विषय बनेगी। अहो! यह वैदेही की भ्रातृ-वधू, वैदेही सहित वैदेही-वल्लभ को परम प्रिय लग रही है। कितना सौभाग्य! धन्य हो गई।

[कहती हुई युगल मूर्तियों के पाद पद्मों में लिपटकर, ध्यान की सिद्धि स्मृति हीन हो गई।]

पश्चात् प्रभु प्रेरणा से श्रवणों में कुछ शब्द पड़ने से ध्यान विरत होकर आपकी वल्लभा प्रकृतिस्थ हो गई। इस प्रकार सिद्ध मुख से कथा श्रवण कर, मिथिलेश कुमार पुनः अन्य कथा श्रवण करने के लिये आतुर से प्रतीत होने लगे।

× × ×

३६

अहह! कैसा मनोरम सुहावना समय है सन्ध्या का, किन्तु लगता है कि यह रजनी की इतिका धूम्र वर्ण साटिका पहने हुये, अपनी स्वामिनी के आगमन की सूचना जगज्जनों को देने आई है अतएव परनारी का मुख न देखने वाले, भगवान भास्कर सम्प्रवेग से स्व-रथ को बढ़ाकर, अस्ताचल देश में चले गये हैं किन्तु उनका साथी अरुण अपनी अरुणिम आभा को इसलिये छोड़ गया है कि काला परिधान धारण किये हुये, रजनी की सवारी संकोच के साथ शनैः शनैः आये, जिससे दिवाकर के रथ की छाया का भी स्पर्श निशाकर की पत्नी को न हो! वृक्ष-समूहों का परिवार काला झंडा लेकर, निशा के विरोध में एक पैर से खड़ा हो गया, कौवे काँव-काँव, अन्य पक्षी चें-चें तथा गीदड़-श्रृगालों का समूह कठोर बोलियों से भरी गाली बकने लगा, अनादर की दृष्टि से, प्रकृति ने उसके आने के मार्गों, भवन की भीतियों कहाँ तक कहा जाय, उसके मुख में भी काले रंग का लेपन कर दिया है।

भानु-प्रभा से पोषित कमल, कुमुदिनी की पोषिका चन्द्र-प्रभा की सवत रात्रि का मुख न देखने का व्रत लेकर, संकुचित मुद्रा में स्थित हो निम्न नेत्र हो गया। चन्द्रवाक के नर-मादे का जोड़ा रात्रि को श्राप देता

हुआ परस्पर के वियोग से पीड़ित आहें भरने लगा और कहा कि जैसे तुमने हम लोगों को, वियोग के कटीले आसन में बैठाया है वैसे तुम भी पूरे दिन में अपने पति के साथ न रहकर विरह व्यथा का अनुभव करोगी ही इसके अतिरिक्त अपने काल में भी, अपने पति से आधे समय तक ही मिल पाओगी काली-कलूटी भयानक वदनी का मुख न देखने के लिये, भयभीत पशु-पक्षी आदि जीव-जन्तु एवं सुर, नर, मुनि, नाग, किन्नर, किंपुरुष आदि बुद्धिजीवी, अपने-अपने कार्य क्षेत्रों से भागकर स्वकीय शालाओं में प्रवेश कर गये हैं तथा दीपक के जले लक्कड़ (लूआठा) उसके मुख की एक परत चमड़ी जलाकर सफ़ेद दाग युक्त जैसा मुख बना दिये हैं।

कुछ लोग कीर्तन-भजन-पूजा-पाठ देव-आरती और स्तवन के द्वारा उस मोह-मूलक रात्रि का विनाश कर देने के साधन में संलग्न हो गये हैं किन्तु रजनी के आगमन में उसी के समान काली करतूत वाले कुछ विपक्षी उसके आने की बधाई देने को समातुर हो गये, नाचने-कूदने की क्रिया-कलाप के साथ जय-जय की ध्वनि उत्साहपूर्ण करने लगे। प्रथम तो दिन का अन्धा उलूक अपनी भयानक आँखें खोल-खोलकर, तमाङ्गी रजनी को देखने लगा और आँखे प्राप्तकर कृतार्थ समझने लगा अपने को। भयावनी अपनी बोली से कृष्णाङ्गी के समान लोगों को भयभीत करता हुआ, स्वपक्ष को सशक्त बनाने का उद्योग करने लगा, वृक्षों में लटकता हुआ दण्ड भोगी चमगीदड़ रात्रि के आते ही उड़-उड़कर प्रसन्नमना पंखों की फरफराहट के वाद्य बजा बजाकर उसका स्वागत करने लगा, कुमुदिनी अपने विकसित मुख में प्रसन्नता का स्नेह भरके श्वेत-दल की श्वेत बत्तियों की ज्योत्स्ना के द्वारा अपने हितैषिणी की आरती उतारने लगी किन्तु चकोर रैन रमणी का अपमान-सा करता हुआ, निशानाथ का ही अपलक दर्शन कर रहा है। रात्रि है, उसको पता ही नहीं अतएव चकोर पत्नी से उदासीन और पति से अनुरक्त होकर, निर्दली अपने को सिद्ध कर रहा है। रात्रि के अनुरूप तमसाछन्न रजनीचर एवं सिंह व्याघ्र आदि हिंसक जन्तु रजनी की सभा के सदस्य बने हुये, उसी के मत का अनुमोदन कर रहे हैं। चन्द्र युक्त नक्षत्रों का समाज निशा के काले अंगों को चमकीले आभूषणों से आभूषित करता तो है किन्तु वे आभरण रजनी के अङ्गों की कालिमा के कलंक को अपनी चमक-दमक से दूर करने में समर्थ नहीं हो रहे हैं। सर्व जीवों को निद्रा के अंक में स्थित कर देना और विषय लोलुपों को विषय उपलब्धि कराने का हेतु होना रूप दो गुणों के कारण ही सारग्राही ब्रह्मा ने दिवस की महत्ता

प्रकट करने के लिये, इसके प्रातिकूल कार्यवाही अब तक नहीं की है अन्यथा इसका अस्तित्व ही न रहता, इसलिये विधिना के विधान पर सारी सृष्टि ने भी अपनी सम्मति प्रदान कर दी है जिससे वह दिन की भाँति उसी प्रकार जीती है जैसे दैवी और आसुरी सम्पत्तियाँ सृष्टि-सृजन के साथ उत्पन्न होकर, प्रलय पर्यन्त बनी ही रहती हैं, क्यों किशोरी जी ! यह वार्ता समीचीन है न ?'' सिद्धि कुँवरि ने कहा।

''युक्ति और दृष्टान्त के दो पंखों वाला वार्ता का विष्णु-वाहन गरुड़ नामक शोभन शकुन, आपश्री के मुख के वैकुण्ठ से निकलकर, साहित्य के सर्वोच्च आकाश में परिभ्रमण करता हुआ अपने पंखों की शब्दावली से सबको सामवेदीय स्वर श्रवण करने के समान सुखदायक सिद्ध हो रहा है, विशेषकर सीता को अत्यधिक आनन्द विवर्धक इसलिये है कि उसे अपनी भाभी से सम्बन्धित सभी वस्तुयें परम प्रिय हैं।

तमोमयी रजनी का लोक में प्रवेश करना लोक को तमसाच्छन्न बनाने की व्यापार वृत्ति है अतएव हम दोनों वहाँ चलें जहाँ न दिन है, न रात न सूर्य हैं न चन्द्र, न जाग्रत अवस्था है न सुषुप्ति, न स्वप्न और न काल की कलना है। गृह-वाटिका की नेत्र-प्रिय मयंकी प्रियता से वितृष्ण अब इसका यहीं विसर्जन कर दें और यज्ञ कुंज के श्रेय संवर्धक आसन के यान में बैठ जाँय, पुनः हम दोनों चित्त में चिन्तन करते हुये उपर्युक्त चिद् प्रदेश में पहुँच चलें, ठीक है न भाभी जी ! इससे वहाँ तम का अदर्शन सिद्धि को स्वयं सिद्ध हो जायगा।''

''प्रकाश का अभ्यासी मन भी अन्धकार से अकुलाकर कहीं खिन्न न हो जाय अतः उसे अनुकूल स्थान में स्थित कर देना उपयुक्त होगा। आपका आचार-विचार एवं उसका प्रचार-प्रसार, वेद ब्रह्म के गर्भ में स्थित सारतम तत्व का जनहितकारी प्रदर्शन है, आपकी मनोरम मधुर-मधुर वाणी में वेद वेद्य से सम्बन्धित चर्चा का अमृत घोल भरा रहने से श्रवणवन्त सुनकर अमृत बन जाते हैं। सर्वभावेन अप्रतिम, अनाख्येय और असमोर्ध्व त्रिभुवन धन्या विश्व वन्द्या वैदेही के सदृश ननँद पाने का सौभाग्य सिद्धि को छोड़कर किसी सुर, नर, मुनि की वधू को क्या प्राप्त हुआ है ? नहीं, तमसाछन्न दीखने वाली दसों दिशाओं के देश से उठाकर, अमल प्रकाशमय भवन में अपने भाभी को संस्थित करने वाली सीताग्रज की अनुजा की जय हो ··· जय हो ·········सदा जय हो। चलें लाड़िली जू यज्ञ कुंज को ·····।''

[यज्ञ-कुंजानुकूल आसनों में स्थित दोनों कनकोज्वला कमनीय मूर्तियाँ यज्ञ-कुण्ड से निकली हुईं, सुन्दर सुडौल स्वर्ण प्रतिमाओं की छवि को छीनती हुई दैदीप्यमान हो रहीं थीं, जिससे यज्ञ-भवन की भव्यता में और-और निखार आ रहा था।]

"अब श्री श्रीधरात्मजा एवं विदेह-आत्मजा को सिद्धासन में आसीन होकर योग-प्रक्रियाओं के सहारे, चित्त को चिद्घन में विलीन कर देना चाहिये और वासनाहीन अस्मिता की नाम मात्र स्थिति (जो प्रायः चैतन्याकार हो गई है) में उस देश का अनुभव दोनों करें, 'यत्र न सूर्यो न शशाङ्को न पावकः' कहकर शास्त्रों ने संकेत किया है। आप तो स्वयं सिद्धा हैं क्योंकि योगोद्भूत सर्व सिद्धियाँ आपको योगाङ्गों और उनकी रहस्यात्मिका प्रक्रियाओं के ज्ञान से सहज सुलभ हैं। सिद्धियों के लोभ से परम वितृष्ण होकर, सशक्ति परब्रह्म परमात्मा पुरुषोतम भगवान को साक्षात् अपने अनुभव का विषय बना लेना, सिद्ध पद (परम पद) में सिद्धि का सदा प्रतिष्ठित रहना ही है अस्तु, जन्म सिद्धा होने से, भाभी का श्री सिद्धि कुँवरि नाम निमिकुल के गति श्री योगिवर्य याज्ञवल्क्य जी ने रखा है।"—वैदेही ने कहा।

"अपनी भ्रातृ-वधू की प्रशस्ति अयोनिजा को आध्यात्मिक प्यारी है अतएव तत्सुख-सुखी रहने वाली सिद्धि की सिद्धाई यही है कि वह अपनी ननँद के स्वर में स्वर मिलाये रहे, यथार्थतः स्वयं सिद्ध स्वरूप अपरिणामी अव्यय और सदा एक रस रहने वाले, वेद-वेद्य रस स्वरूप एक साशक्तिक परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान हैं जो अपनी सत्ता व सिद्धता से, अपनी सिद्धि-सेविका की सत्ता व सिद्धता बनाये हुये हैं अन्यथा बिना पारस के कुधातु स्वर्ण स्वरूप न प्राप्त होती। अच्छा है, आपकी इच्छा का अनुगमन करके, हम दोनों ध्यान के देश में अविलम्ब चलें।" ····सिद्धि ने कहा।

वैदेही एवं विदेह-कुल-वधू सिद्धासन में बैठ गईं. ध्यानावस्था में सहज सिद्ध कुंडलिनी शक्ति से छह चक्रों का भेदन हो गया, जीव ब्रह्म में संयुक्त होकर, स्व के ज्ञान को भूल गया, प्राण सुषुम्ना नाड़ी से प्रवेश कर, ब्रह्मपुर में स्थित हो गया। एक रस ब्रह्म की अनल्प अमल ज्योति जो अनन्त सूर्यों की आभा को अपने अल्प अंश से प्रदान कर, जगत की प्रकाशिका स्वयं सिद्ध है जो चेतनघन की सत्ता मात्र स्वयं की सत्ता से शेष थी, रह गई, वहाँ सूर्य-चन्द्र-पावक की संज्ञा शून्य थी। ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय और ध्याता-ध्यान-ध्येय आदि की त्रिपुटियाँ विलीन थीं, एक ब्रह्म सत्ता स्वयं में स्वयं से, स्वयं की सत्ता स्थित किये थी।

श्री सिध्दि-मन-मानस-बिहारी-बिहारिणीजू

[एक मुहूर्त्त पश्चात्······· सगुण-साकार-सविशेष ब्रह्म के ध्यान संस्कार से संस्कृत पूर्वाभ्यासी चित्त के अन्य वासनाहीन होने से चिदाकाश में सगुण-साकार ब्रह्म विषयक दृश्यों का उदय-अस्त होने लगा। अस्तु, युगल मूर्तियाँ आनन्दं ब्रह्म, रसमयं ब्रह्म के अपार अम्भोधि में मग्न हो गईं। प्रकृतिस्थ होते न देखकर दो मुहूर्त के अनन्तर, सखी-सेविकाओं ने भगवन्नाम संकीर्तन के द्वारा, उन्हें उस स्थिति से पृथककर प्रकृति-प्रदेश में पहुँचा दिया। दोनों के अङ्गों में हर्ष व प्रेम के चिह्न अतिरेकता के कारण स्पष्ट नेत्रों का विषय बन रहे थे। दोनों एक दूसरे से लिपटकर, ध्यान देश के आनन्द की स्मृति से विभोर बन गईं, कुछ समय में समाहित चित्त होकर, चिदाकाश के दृश्यों के दर्शनानन्द की चर्चा परस्पर कर-करके, प्रेम सरोवर में मज्जनोंन्मज्जन करने लगीं।]

"हस्तामलक सर्व सिद्धियों की स्वामिनी सीताग्रज की सीता ने समाधि-अवस्था में क्या-क्या अनुभव किया ? अपनी प्राण-प्रियतरा भ्रातृ-वधू से उसे बताने की कृपा करें क्योंकि किशोरी जू अपनी भाभी से कुछ भी नहीं छिपातीं, बड़ी उदार अमाशया हैं, जय हो जन-मन रञ्जनी जीव की जीवनी जनक दुलारी जू की ········।"

"प्रति प्रभव के द्वारा विदहेजा जब प्रकृति कार्यों के सर्वभावेन लय हो जाने पर, स्वयं चिदाकाश में संलीन हो गईं, तब उसकी अस्मिता का ज्ञान भी उसे न रहा, चिद्घन स्वरूप की स्थिति में एक चिदातमा के अति-रिक्त कुछ न होने से कौन किसका ज्ञान करे, जब दृश्य ही नहीं तो द्रष्टा का, ज्ञेय नहीं तो ज्ञान का, और ध्येय नहीं तो ध्यान का अभाव होना स्वा-भाविक है, कितने काल तक वह स्थिति रही, वैदेही को बिना बुद्धि के ज्ञान कर लेना सर्वथा असंभव था किन्तु वासनाहीन नाममात्र की अस्मिता का बीज नष्ट न होने के कारण, पूर्व संस्कारवशात् चिदाकाश में एक अनुपम आनन्दमय दृश्य का दर्शन होने लगा द्रष्टा को, जो वेद-वर्णित रस स्वरूप परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान की चिदातमा में बिना सहकारी सामग्रियों के, उसी प्रकार हो रहा था जैसे महासागर में सहज उर्मियों का उदय-अस्त अपने आप होता रहता है। वह दृश्य इस प्रकार था······ प्रथम-प्रथम चिदा-काश के रंगमंच पर, एक श्यामला सहज सुहावना वारिद-वारिज वरण षोड़ष वर्षीय पुरुष दृष्टि-पथ का विषय बना जो अनन्तानन्त सौन्दर्य-माधुर्य और सौकुमार्य आदि शरीर-सम्पत्तियों से संयुक्त था। अपनी दृष्ट चित्ताप-हारी चितवनि एवं मन्द-मन्द मुसकान से मुनियों के मरे मन को भी मोहित

करके, पुंसा मोहन नाम पाने की सर्वभावेन योग्यता अपने में प्रकट कर रहा था वह। सच्चिदानन्द विग्रहवान पुरुष का चिदाकाश में आविर्भाव और तिरोभाव का कार्य, द्रष्टा के ज्ञान का विषय बन रहा था संयोग-वियोग की लीला का प्रभाव दर्शक को प्रभावित किये बिना न रहता, दृश्य की दिव्यता वाक् और मन के बाह्य, विलक्षण और अप्राकृत थी, ज्ञान नहीं कितने काल के पश्चात् दूसरा दृश्य द्रष्टा का विषय पुनः बना, वह यह है ·· उसी महान परम पुरुष को, पुरुष और स्त्री के दो रूपों में द्रष्टा देखने लगा, विषय का ज्ञाता आश्चर्य-सिन्धु में निमग्न हो गया, उन्मीलित ज्ञान नेत्रों से भली-भाँति निरीक्षण करने पर भी उसे दृश्य का स्त्री स्वरूप अपने से अभिन्न सर्वभावेन प्रतीत हुआ तत्पश्चात् द्रष्टा और दृश्य का स्त्री स्वरूप दो तेजों के सदृश मिलकर एक हो गया जो पूर्व द्विधा (ब्रह्म-शक्ति) स्वरूप से अपृथक था, आश्चर्य यह है कि द्रष्टा स्वरूप दृश्य के शक्ति स्वरूप में मिल जाने पर भी, उसका ज्ञान द्रष्टा की तरह चिदाकाश के दृश्य का दर्शन कर रहा है जैसे लोक में लोग स्वप्नावस्था में अपने मृत्यु एवं चिता में जलने की क्रिया को मरकर भी देखते हैं, पुनः दृश्य शक्ति के अंग से अष्ट तदाकारा उसकी सखियाँ प्रकट हो गईं, पुनः वे सोलह हो गईं, इस प्रकार की वर्धन क्रिया के द्वारा सखी समाज अनन्त हो गया, तत्पश्चात् सिंहासन-छत्र-चमर विंजन-छड़ी-माला-चन्दन-इत्र, वन-वाटिका, मोर कोयल-चातक हंस आदि पक्षी और अनेकानेक उपयोगी सामग्रियाँ मनुष्याकृति में प्रकट हो-होकर, उपर्युक्त नामों के आकार में परिवर्तित होती जाती थीं, तदनन्तर सखियों में एक से दो होने वाले, पति-पत्नी रूप पुरुष को सिंहासन में बैठा-कर सविधि सप्रेम पूजन किया, आरती उतारी और दोनों का स्तवन प्रदक्षिणा करके, पुष्पाञ्जलि समर्पण के साथ प्रणाम किया, पुनः शक्ति के संकेत से सखियों ने पुरुष के आनन्द विवर्धन हेतु रास क्रीड़ा की रसमय भूमि को साज-सज्जा के साथ शक्ति की इच्छा होते ही द्रष्टा के दर्शन का विषय बना दिया।

तदनन्तर सखि समूह से प्रार्थित युगल रसिकाधिराज रास-मण्डल के मध्य, तारिकाओं के बीच युगल चन्द्र सम शोभा समुत्पन्न करने लगे। नख-शिखान्त वसन-विभूषणों से विभूषित सच्चिदानन्दात्मक दिव्य विग्रहवान सारा समाज, कोटि-कोटि सूर्यों के प्रकाश को अपना आंशिक प्रकाश कहने में संकुचित हो रहा था। परिकरावृत रास-मण्डल मध्यस्थ रसमय किशोरी-किशोर परस्पर अपनी अनन्त अलौकिक काय-सम्पत्ति तथा चितवनि-मुस-

कनि-बोलनि-नर्तनि-गायनि एवं प्रेमालिङ्गन आदि-प्रेम-प्रक्रियाओं के द्वारा स्वयं से सर्व परिकरों को और सबसे स्वयं को रसानुभूति कर-कराके आनन्द ब्रह्म का साकार साक्षात् स्वरूप सबको बना रहे थे, आनन्द ! आनन्द !! आनन्द ·····!!!

रास मण्डल में सखियों की नृत्यगान-वाद्य और भाव-भंगिमाओं की कला-कुशलता, सर्वेश्वर-सर्वेश्वरी को आकर्षण करने वाली सिद्ध हो रही थी, कितने काल तक वह आनन्दोत्पादिका रास-लीला चलती रही, द्रष्टा को इसका अनुभव नहीं है, द्रष्टा चिदाकाश में उदित दृश्य के आनन्द-सिन्धु में मग्न था, न :जाने किस वेगवान वायु ने लहरों के सहारे, उसे तटवर्ती भूमि में लाकर पटक दिया, प्रकृतिस्थ होने पर ज्ञात हुआ कि सखी-सेविकाओं ने हरि नाम संकीर्तन के माध्यम से उसको चिद् से उतारकर, अचिद् में लाने का प्रयास किया है। अब ननँद की भाभी को भी ध्यान-देश के दृश्यों को जो आत्मविकास के परिचायक हैं, बताने की प्रक्रिया का प्रारम्भ करना चाहिये। सीता के श्रवण स्व-विषय की उपलब्धि के लिये अत्यधिक आतुर प्रतीत हो रहे हैं। हाँ ! कहें, शीघ्र कहें, भाभी जी !"

"आपकी भ्रातृ-भार्या का चित्त जब चिदाकार हो गया समाधि की अवस्था में तब उस अमल ज्योति के मध्य में अपनी ननँद जैसी कनकाङ्गी वस्त्रालङ्कार-अलंकृता द्वादशाब्दा, सच्चिदानन्द विग्रहा, सर्वश्रेष्ठ गुणोपेता, सर्वशक्ति समावृता, अनन्त शरीर सम्पत्ति समायुक्ता, शत-शत शशांक मुख मद मर्दिनी, चार्वाङ्गी चन्दन-चर्चिता, चारुनेत्रा, मन्द स्मिता मनोहरा, परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान की स्वरूप भूता परमाह्लादिनी शक्ति का दर्शन, वहाँ के द्रष्टा को होने लगा, किञ्चित काल में ही एक परम पुरुष का दर्शन, आपके बताये व अध्यात्म देश में देखे हुए पुरुष के सर्वथा सदृश हुआ, तदनन्तर वह पराशक्ति अपनी करस्थ जयमाला को, परम पुरुष के गले में डालकर पुरुष में ही समाविष्ट हो गई पुनः कभी दो के एक और कभी एक के दो रूप में द्रष्टा को दोनों दर्शन देने लगे।

तदनन्तर······चिदाकाश में उदित विवाह मंडप के मध्य उक्त पुरुष और उसकी शक्ति को दूलह-दुलहिन वेष में, वैवाहिक-क्रिया सम्पादन करते द्रष्टा ने अपना विषय बनाया आश्चर्य ! उस दिव्य दृश्य में सिद्धि के सास-श्वसुर और सपत्नीक सीताग्रज को ही कन्या-दान, पाद-प्रक्षालन आदि क्रिया का सँभार करते द्रष्टा ने दर्शन किया तत्पश्चात् कोहवर-क्रिया सम्पादन, युगल नव दूलह-दुलहिन की अष्टयामीय-सेवा तथा तज्जनित आनन्द की

अनुभूति चमत्कार पूर्ण वैदेही की भ्रातृ-वधू को करते द्रष्टा ने देखा अस्तु वह अनल्प अमृतानन्द का अनुभव करता हुआ, सुख सिन्धु में निमग्न था किन्तु न जाने उसको किसने, किस समय प्रकृति-प्रदेश में लाकर स्थित कर दिया, अब तो वहाँ जैसी मात्र वैदेही का दर्शन ही इस देश में आनन्द का उत्पादक दृष्टिगोचर हो रहा है।''

अपनी प्रियतमा श्री सिद्धि-मुख से इस प्रकार ध्यान देशीय रामकथा श्रवणकर, श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम-चिह्नों से चिह्नित हो गये और पुनः सिद्धि कुँवरि मुख-विनिश्रित-कथा श्रवण करने के लिये समातुर से जान पड़ने लगे।

× × ×

३७

अर्द्ध रात्रि का समय था। अपने प्राण-वल्लभ की सेविका सिद्धि स्व-स्वामि के चरण-कमलों की सेवा करके, स्वकीय शयनासन में सो गई अपने आराध्य का स्मरण करते-करते। चित्त की भीति पर सीताग्रज, सीता और अदर्शित सीताकान्त के अतिरिक्त अन्य किसी चित्र का चित्रण न होने से स्वप्न में भी अन्य किसी दृश्य का दर्शन, आपकी अनुगामिनी को न होना स्वाभाविक है। पूर्णिमा नामक पूर्णा तिथि में पूर्ण कला से संयुक्त निशानाथ गगन में अपने गमन करने का तीन भाग चल चुके थे, चतुर्थ भाग भी समाप्त करने के लिये, वे त्वरान्वित से जान पड़ते थे। अरुण-शिखा ने आकर उन्हें भास्कर भगवान के आने की सूचना देकर बता दिया था कि दिवाकर की योजना निशाकर के विपक्ष में है अतः अरुणोदय होते-होते रजनी के साथ निशानाथ को सूर्यमण्डलवर्ती देश से पलायन कर जाना चाहिये अन्यथा हतप्रभ होकर शशाङ्क को पराजयाङ्क विशेषण से विभूषित होने में विलम्ब न होगा। सप्तऋषि भी ध्रुव की परिक्रमा शीघ्र करके, चन्द्रदेव को शीघ्रता करने की सूचना दे रहे थे। सुरमार्ग तो यह सब-सुन समझकर मुख को मलीनता के चादर से ढक रहा था। शुक्रदेव अपने प्रकाश के प्रभाव से, निशानाथ की सहायता करने के लिये उसी प्रकार आये जैसे एक पिपीलिका शक्कर के सुमेरु को अपने आहार से समाप्त कर एक छोटे चीनी के ढेले का अस्तित्व रखने को चले। विधु की विवशता देखकर, कैरव कुल की मुख-मुद्रा निकट भविष्य में उसके संकुचित होने की सूचना दे रही थी अतएव आँखों में अश्रुबिन्दु झलक कर संयोग में वियोग दशा की स्मृति करा रहे थे।

सभी सुर-नर-मुनि समुदाय निशा के स्थान में, अरुण के उदय काल का अरुणिम बेला का दर्शन अपने-अपने दैनिक कृत्यों का अनुष्ठान करने के लिये आकांक्षा कर रहा था क्योंकि उन्हें रात्रि से उदासीनता हो गयी थी। यत्र-तत्र कल्याण कामी लोग ब्रह्म-चिन्तन की स्थिति में स्थित होकर तमसाछन्न रजनी के राज्य से अकुलाये हुये चित्त से, चिदाकाश के चिन्मय प्रकाश मण्डल के गाँव में निवास बना लिये थे। नीरवता के वातावरण का मन चंचल हो उठा था कुछ बोलने के लिये, अतएव उसके मुख से कुछ-कुछ शब्द निकलने लगे थे। ठीक रात्रि की इसी अन्तिम बेला के मुख में पड़ी सोती हुई, आपकी अर्द्धांगिनी को उठने के प्रथम-प्रथम स्वप्न प्रदेश में बिहार करने का अवसर अकस्मात आ गया था, जिससे उठकर आराध्य चिन्तन करने में कुछ क्षणों का विलम्ब हो जाना स्वाभाविक था। स्वप्न साम्राज्य में जिस दृश्य का दर्शन द्रष्टा को हुआ, वह इस प्रकार था। श्रवण करें, नाथ।

"सिद्धि-सदन का सुन्दरसुकक्ष है जो हीरे-मणि-माणिक, लाल और वैदूर्य आदि से विनिर्मित है। दिव्य ज्योति से जगमगाता हुआ भवन रात्रि को दिन के रूप में परिवर्तित करने में प्रयत्नशील जान पड़ता था, भूमि सुन्दर सुनहले आदि कई रंग के दिव्य स्तरणों से ढकी थी। एक परम प्रकाशमान सर्वश्रेष्ठ स्वर्ण सिंहासन रखा था, जिसमें आप श्री अपने भव्य भाम के साथ स्नेहमयी मुद्राओं को अपनाकर विराजमान थे। दूसरे उसी प्रकार के सिंहासन में आपकी अनुजा अपनी भाभी को लिये हुये विराजकर देदीप्यमान हो रही थीं। दोनों सिंहासनों की सेवा में छत्र-चमर-छड़ी-इत्र-पान आदि मङ्गल द्रव्य लिये हुये सखी-सेविकायें अपने-अपने स्थान पर स्थित थीं। हरि-यश-मिश्रित संगीत-सुधा की लहरी समाज को आत्मसात कर रही थी, सखियों का नृत्यगान-वाद्य एवं भाव भंगिमा का कौशल्य, कौशल किशोर के सहित, मैथिल किशोर को अपने अर्थ में स्थित कर, प्रेमार्णव में गोता लगाने को बाध्य कर रहा था, दूसरे सिंहासनास्था युगल किशोरियों की भी स्थिति प्रथम सिंहासनस्थ युगल किशोरों की अनुगामिनी सर्वभावेन सिद्ध हो रही थीं, जहाँ आनन्द का साक्षात् सिन्धु स्वयं लहरा-लहरा कर किलोल करता हो, वहाँ की तटवर्ती भूमि भीग जाय या उसी में लय हो जाय तो आश्चर्य क्या है? सभी समाज रसोत्पन्न आनन्द की अनुभूति कर रहा था। कुछ क्षणों में उस दृश्य का तिरोभाव और दूसरे का आविर्भाव हो गया.........। वह इस प्रकार था कि सिंहासन के स्थान पर कोमल

कालीन के ऊपर बिछे हुये सुन्दर स्तरण बड़े ही मनोरम और सुखदायक थे। पृष्ठ और पार्श्वभाग में टिकने के लिये कामदार शोभा सम्पन्न उत्तम उपवर्हण रखे थे। इस प्रकार के दो आसनों में उपर्युक्त युगल किशोर और किशोरी का जोड़ा उक्त प्रकार से ही आसीन था। सखी-सेविकाओं का समाज सेवा-संलग्न था।

"सखे! अवधकिशोर को मिथिलेश किशोर ने अपने मुख-चन्द्र का चकोर क्यों बना लिया है? मधुर मुसकान के साथ भाम ने श्याल के ठोढ़ी में कर-कंज रखकर प्यार से कहा क्या (स्पर्श करके) यह आनन नहीं, अमृत का सजीव-साकार विग्रह है। इसमें इतना आकर्षण क्यों? सर्वाकर्षक को आर्कषित करने वाला लोह चुंबक न्यायेन कोई आकर्षणकारी अप्रतिम वस्तु विशेष है क्या? अथवा वशीकार संज्ञा को प्राप्त पुरुष को वश में करने वाला वशीकरण यन्त्र है? या जगन्मोहन को मोहने वाला मोहन-मन्त्र से सिद्ध किया हुआ कोई स्वर्ण पुटक है जिसके दर्शन मात्र से द्रष्टा मुग्ध हुये बिना नहीं रहता या जादू का कोई चमत्कारिक केन्द्र है कि जिसके सम्मुख आते ही जादूगर की कला कुशलता, कलाधर को अपनी ओर आर्कषित किये बिना नहीं रहती। क्या इसकी अभिज्ञप्ति इस आनन में आसक्त होने वाले अर्थार्थी को मिल सकती है?"

"अक्षय अमृत के कोष का स्वामी जो स्वयं अक्षय अमृत के सिन्धु का साकार विग्रह है, उसका प्रतिबिम्ब लक्ष्मीनिधि नामक शीशे में पड़ता है इसलिये वह दर्श संस्थित स्वयं के अमृतानन को देखकर बड़ा प्रसन्न होता है और अमृत को आँखों के द्रोणों में भरकर पीता हुआ भी, अतृप्ति का ही अनुभव करता है। जय हो स्वयं को संमोहन समुत्पन्न कर देने वाले अवनिप कुमार के अमृतानन की। जय हो ·········पुंसा- मोहन मुखार्विन्द की! जय हो दृष्ट चित्तापहारी चन्द्रानन की·········।

मनु-मानव, देव-दानव की कौन कहे, बिच्छू-सर्पिणी, व्याघ्र-सिंह आदि हिंसक थलचर, मकर-नक्र-घड़ियाल आदि जलचर और गरुड़-गृद्ध-काक-कीर आदि नभचर जिसे देखकर आर्कषित हो जाते हैं तथा अपनी सहज दुष्ट वृत्ति को, साधु-स्वभाव में परिवर्तित कर चकोरवत् अपलक देखते हुये अघाते नहीं हैं, वह समस्त प्राणिवर्ग को आर्कषित करने वाला पुरुष दर्श-संस्थित अपने प्रतिबिम्ब को देखकर स्वयं आर्कषित हो जाय अपने अप्रतिम रूपौदार्य पर तो कौन आश्चर्य है? बालकपन में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर

कितने बार मोह हुआ उस महापुरुष को, इस तथ्य वार्ता की जानकारी माँ कौशिल्या से जानी जा सकती है।

इन्द्रियों को अपने वश में करने वाला, उनका अधिपति आत्माराम अपने आत्मा से पृथक कभी नहीं होता अर्थात् आत्मा में ही वास करता है इसलिये उसे आत्मवशी और आत्माराम कहते हैं अतएव उसकी आत्मा अलग से कोई यन्त्र नहीं है, उसका स्वयं स्वरूप है, प्रश्नकर्ता महोदय !

बड़ी-बड़ी कारी-कारी, कोरदार कजरारी आँखें शीशे में अपने से अपने को, अपने में देखकर, उनकी अप्रतिमता पर मुग्ध हो जाती हैं। सुखी होती हैं, उसी प्रकार कोई भी, जगमोहन हो या मदनमोहन, दर्श संस्थित अनाख्येय सौन्दर्य सारतम स्व-प्रतिबिम्ब को देखकर मोहित हुये बिना न रहेगा क्योंकि उसे अपने मुख का दर्शन कभी होता नहीं, सुन्दर साफ शीशे का संयोग जब लगा तभी अपने मुख के दर्शन का सौभाग्य सम्मुख सम्प्राप्त हुआ प्रतीत होता है उसे, अस्तु, वह अन्य का मुख समझकर मुग्ध हो जाता है। अपनी माँ से आप पूँछ लेंगे कि उनके इस बच्चे की बात सही है या नहीं।

जिस अनादि जादूगर की कला का प्रदर्शन यह विचित्र जगत है, वह स्वयं की कला को देखकर सोचने लगा कि अहो ! एक छोटे वट-बीज से कैसे इतना महान वृक्ष नेत्रों का विषय बन रहा है, जो बीज से अतिरिक्त कुछ नहीं है, आश्चर्य ! अस्तु, अनन्त अपनी अचिन्त्य शक्ति संभूता कलाकारी का अन्त न पाकर मुग्ध हो जाय अपनी अनन्त शक्ति के कला वैभव पर तो कोई आश्चर्य नहीं। अहो, बलिहार ! बलिहार ! अपने आश्रित जन के आधीन हो जाना, आश्रित के अतिरिक्त अन्य को न जानना, न देखना, न सुनना और उसे अपने शिर, हृदय, नेत्र, बाहु, प्राण, मुकुट और हृदय हार करके मानना तथा आश्रित जन की नीच से नीच सेवा करके ही प्रसन्न रहना, एक सीताग्रज के भाम सीताकान्त के औदार्यपूर्ण स्वभाव में ही देखा सुना जाता है अतिरिक्त अन्य किसी सुर-नर-मुनि-नाग में न देखा गया, न सुना गया ऐसा स्वभाव। असमोर्ध्व अनन्त कल्याण गुणगणाकर वैदेही-बन्धु के सर्वविधि बन्धु की सदा जय हो ! जय हो !! जय हो !!!" इस प्रकार वैदेही-बन्धु के कहने पर।

"प्यारे ! भोग, भोक्ता के आनुगुण्य होता है अतएव सर्वभोक्ता के ज्ञानेन्द्रियों को मोहक-मधुर-आकर्षक, रुचि-वर्धक, रसमय अमृतमय,

आनन्दमय और सर्वदोष विहीन भोग ही तो उपयुक्त होता है अन्यथा अनुकूल भोग के अभाव में भोक्ता को आनन्द की उपलब्धि नहीं होती यथा रसज्ञ-रसना को स्वयं के रस से अधिक रसपूर्ण भोजन ही स्वादुकर सिद्ध होता है, इसी प्रकार त्वक-नेत्र आदि को अपने से अच्छे नेत्र व त्वक् के दर्शन स्पर्श से आनन्द की अनुभूति होती है इसलिये लाल साहब को, लली जू से विनिर्मित भोग, जब अपने अनुभवीयकरणों से स्पर्श अच्छा लगेगा तभी उसमें रुचि-आकर्षण-माधुर्य-मोहकत्व-रसत्व और आनन्दत्व की प्रतीति होगी अन्यथा अपने से अच्छे भोग के अभाव में नाक-भौं सिकोड़ने की ही चर्या बनी रहेगी इसलिये आपका भोग्य आपके इच्छानुकूल होना, भोक्ता के वैभव का उत्कर्षक है, भोग का कुछ भी उसके लिये नहीं है, वह तो भोक्ता के हाँथ का खिलौना है, अतएव आपके कहे हुये सभी दोष-गुण वक्ता के ही हैं, भाम के श्याल के नहीं, अपने दोषों को अन्य पर आरोपित करना अच्छा नहीं होता, कहीं न्यायालय में हार हो जाय तो मुख की खानी पड़ेगी, क्यों ठीक है न लाड़िली जू !" सिद्धि कुँवरि ने कहा।

"भ्रातृ-वधू का कहना सर्वभावेन सत्य को सबके समक्ष कर देना है अतः सिद्धि की सिद्ध वार्ता का विनियोग न करने वाले को न्याय के सामने शिर झुकाना ही पड़ेगा अच्छा है, अपनी भाभी की ननँद के संकेत से भ्रम में पड़े हुये संशय ग्रस्त लोगों को, उलझे मन को सुलझा लेना चाहिये, भैया के गोरे गात में जो पीतपटधारी सर्वालङ्कारों से अलङ्कृत श्याम वपुष का प्रतिबिम्ब यत्र-तत्र पड़ रहा है, वह किसका है ? जिसके शिर हिलाने से प्रतिबिम्ब में कुण्डल हिलकर कपोलों पर लहराये, समझ लेना चाहिये कि उसी का प्रतिबिम्ब है। बोध हो जाने पर यह सहज ज्ञान कर लेना चाहिये कि जो वैदेही के भैया के हृदय-देश में बाहर-भीतर बसता है, उसी के दोष-गुण भैया के बाह्याभ्यन्तर हैं अन्य के नहीं। पूर्व पक्षी को उत्तर पक्षी के सिद्धान्त को स्वीकार कर, आश्चर्य के सिन्धु में डूबने से अपने को बचाना चाहिये अन्यथा पराजय के साथ अपना अस्तित्व भी खोना पड़ेगा। मिथिला-वासी अपनी मेहमान की पराजय देखकर जीना नहीं चाहते इसलिये निमिपुर के जीने के लिये, प्रश्नकर्ता को अपने किये-कराये को, निरभिमानी, कर्तापन से अछूते, फलासक्तिहीन, दुर्बल जीव पर नहीं मढ़ना चाहिये। इसका प्रायश्चित यह है कि गौर-वपुष के देह-इन्द्रिय-मन-बुद्धि-वाक्-प्राण में श्याम वपुष नित्य बसकर, उनका किया-कराया अपना समझे और गौर वपुष को अपना दर्शन-दान दे-देकर सदा प्रसन्न रखा करे, उसकी चितचाही में

आनाकानी न करे और अपने प्रेम रस, रसमय कैङ्कर्य, रसमयी लीला के आस्वाद, रसमय नामामृत पान एवं रसमय रूप के अनुभव से, उसको कभी वञ्चित न रखे, बेचारे गौर वपुष के बाहर-भीतर किसी प्रकार की कालिमा की बिन्दु न पड़े और सदा उसे अपने अनुभव का विषय बनाये रहे, जिससे उसकी सत्ता सहज स्वरूपानुकूल बनी रहे। क्यों, भाभी जी ! ठीक है न ?"

"अहो ! यह तो आप लोगों का श्यामाङ्ग, गौराङ्ग को पहले से ही स्वयं को सर्वथा सर्मपित कर रखा है, यह उसी के अनुभव की वस्तु है, वास्तव में श्याम, गौर है कि गौर श्याम है, इसका निर्णय लिये बिना न्यायकर्ता के न्याय का पालन करना किसको उचित होगा ?"

"हम तो हमारे राघव जू के राघव जू हमारे हैं" इस अनिर्वचनीय सम्बन्ध का स्मारक सीताग्रज का कीर्तन-वाक्य, भरताग्रज को हृदयस्थ कर लेना चाहिये, इसमें सीताकान्त के तर्क और न्यायकर्ता के न्याय का निर्वाह हो जायेगा। इस प्रकार सिद्धि-वाक्यों को श्रवणकर, सभी को समाधान हो गया।"

सिद्धि जी ने अपनी स्वप्न-कथा को, अपने पति-परमेश्वर को सुनाकर, उन्हें और कथा-श्रवण करने की आतुरता से युक्त कर दिया।

× × ×

३८

प्रकृति की नर्तन क्रिया से प्रभावित देहाभिमानी पुरुष, उसके कर के खिलौने बन जाते हैं, जैसे, नटिनी से नचाये जाने वाले बन्दर ! किन्तु पुरुष (परब्रह्म परमात्मा) से सर्वथा प्रभावित लोग, ब्रह्मज्ञान से ब्रह्म-प्राप्ति करके प्रकृति के हाँथ से (प्रकृति-सम्बन्ध से) सर्वभावेन मुक्त हो जाते हैं परन्तु विद्वत् जन प्रकृति से पार जाना बहुत ही दुर्गम बतलाते हैं। प्रकृति परमात्म-प्राप्ति की महा विरोधिनी है जो जीव को परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान की ओर मुख ही नहीं फेरने देती, अपवित्र में पवित्र की, दुःख में सुख की, अनात्मा में आत्मा की और अनित्य में नित्य की प्रतीति कराकर, जीव को अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष और अभिनिवेष नामक पंच क्लेशों का शिकार बनाये रहना, इसका व्यापार है।

कहते हैं सुधीजन कि इस प्रकृति एवं इसके कार्य का ज्ञान प्राप्त करके इसकी असत्यता तथा हेयता का विचार कर, इससे उदासीन हो जाना

चाहिये और परमातम ज्ञान के द्वारा परमात्मा में अनुरक्त होकर, प्रकृति पार परब्रह्म की प्राप्ति कर लेना ही परम पुरुषार्थ समझना चाहिये अतएव यह आपकी श्याल-वधू आपसे प्रकृति का स्वरूप समझना चाहती है, क्या ननँद के नाथ समझाने का श्रम करके अबोधिनी को बोध प्रदान करेंगे ?

जैसे जीवों में जीवनी शक्ति जीव के साथ रहती हैं वैसे ही मनुष्य-देव-नाग पशु-पक्षी आदि के अपनी-अपनी योनि के अनुसार कार्य करने की शक्ति, उनके स्वरूप के भीतर ही विद्यमान रहती है, जिससे उनके स्वरूप की सुरक्षा भी होती है, जब जैसा कार्य करने की इच्छा होती है उन्हें तब तैसा कार्य संकल्प करते ही उनकी स्वरूपान्तर शक्ति से होने लगता है, जैसे—कुलाल संकल्प करता है कि आज अमुक अमुक बर्तन बनाना है, संकल्प करते ही उसके देह-इन्द्रिय-मन-बुद्धि सबके सब उसकी अन्तर्भुक शक्ति से कार्यरत हो जाते हैं, जिससे बर्तन नाना प्रकार के निर्मित होने लगते हैं, जगत्-व्यवहार चलने लगता है एवं प्रकारेण परब्रह्म परमात्मा की अपृथक स्वरूपाशक्ति परमातमा के अन्तर्भुक होकर, उसी प्रकार रहती है, जैसे दूध में मधुरता और भानु में प्रकाश. वह अचिन्त्य शक्ति सर्व समर्थ अनन्तत्व को लिये हुये रहती है, उसकी इयत्ता का अन्वेषण सर्व शक्तिमान परब्रह्म पुरुषोत्तम भी नहीं कर सकता। जगत का मूल, उपादान, निमित्त और सहकारी कारण परब्रह्म परमात्मा जब जगत रचना का संकल्प करता है, तब उसके अन्तर्भुक स्वरूपा शक्ति की अंशभूता त्रिगुणात्मिका प्रकृति की साम्यावस्था नहीं रह जाती, वह महदादि तत्वों को परब्रह्म परमेश्वर के संकल्प व सकाशता से प्रकट कर, जगत् का रूप दे देती है; या यों कहिये कि जब मूल स्रष्टा परब्रह्म परमेश्वर स्वयं के संकल्प रूप वीर्य को प्रकृति योनि में आरोपित करता है, तब प्रकृति के उदर में ब्रह्म का वीर्य अनन्त अण्डों का रूप धारण करके समय पर प्रकट हो जाता है तद्नन्तर परब्रह्म अपने अंश भूत अनन्तानन्त जीवों के साथ अन्तर्यामित्वेन सूर्यघट वत् अनन्त ब्रह्माण्डों के अनन्तानन्त जड़-चेतनात्मक जीव शरीरों में प्रवेश करता है बस! उसी को जगत् कहते हैं। जगत् की उत्पत्ति-स्थिति और लय परमात्मा में ही होता है अतएव यह सारा संसार ब्रह्म स्वरूप है, ब्रह्म से अतिरिक्त अकिञ्चित है। प्रकृति का कार्य परब्रह्म परमेश्वर के संकल्प से परब्रह्म में, परब्रह्म के लिये ही होता है, जगत् की रचना परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान के महिमा का विकास है। प्रकृति पतिव्रता है, उसकी नर्तन क्रिया परब्रह्म को सुख पहुँचाने एवं उनके संकल्प को सुरक्षित रखने के लिये है,

बिना प्रकृति के जगत् की नाट्यशाला की बहुरंगी लीला चेतन मात्र से चल नहीं सकती क्योंकि संकल्प मात्र चेतन ब्रह्म का कार्य है और अनन्त प्रकार की लीला, चेतन के संकल्प व सकाशता से उनकी उन्हीं अन्तर्भुक रहने वाली प्रकृति शक्ति का काम है, इसी को माया अजा, प्रधान, महत् और अव्यक्त आदि कई नामों से शास्त्रों में कहा गया है।

जीव का अपने स्वरूप को भूल जाना और माया के आधीन होकर, उसी के चंगुल में फँसे रहने का मात्र कारण यह है कि परब्रह्म के भोग्य वस्तु प्रकृति को अपनी भोग्या मान लेना। संसार को प्रलय तक सुरक्षित रखने के लिये अपनी ओर आकर्षित करना, इसका व्यापार है जैसे, विष्णु भगवान मोहिनी रूप धारणकर इसी माया से अपने को ढँक लिये थे और सुरों तथा असुरों को अपनी ओर आकर्षित कर व्यामोह पैदा कर दिये थे तथा अपने रूप-जाल में फँसाकर अपने संकल्पानुसार कार्य की सिद्धि संसार के समक्ष कर दिखाये थे। परमात्मा की प्रकृति विश्व-विमोहिनी नारी है, इसके एक-एक अंग आपात रमणीय और आकर्षक हैं। यह अपनी नर्तन क्रिया एवं भाव-भंगिमा से जीवों को अपनी ओर मुग्ध इसलिये किये रहती है कि जीव संसारी बनकर संसार को निश्चित समय तक रखने के लिये, संसार के रंगमंच पर अपने-अपने पाये हुए पाठ को, अभिनेता की प्रसन्नता के लिये सुचारुतया समाज में प्रस्तुत करते रहें जिससे पुण्य कर्माओं को स्वर्ग के मंच पर मिश्रित कर्मानुष्ठानियों को मृत्यु-लोक में मनुष्यानुकूल पाठ करने के मंच पर, पापात्माओं को नरक और अधमाधम योनियों के अनुकूल पाठ करने के योग्य मंच पर पाठ करने से संसार की परम्परा चलती रहे संसार के प्रवाह में प्रवाहित करने वाली इस अविद्या रूपिणी नर्तकी-शक्ति का स्वभाव बड़ा ही चंचल है, यह अपने रूप लावण्य से सुर-नर ही नहीं, बड़े-बड़े मुनियों के मन को भी मन्थन करने में समर्थ है। सत-रज-तम की त्रिगुणात्मिका अर्थात् श्वेत-लाल और काले रंग की साड़ी पहनकर अपने गुणों व अपने को छिपाये रहती है, दिन-रात और संध्या इसके परिधानीय रंगों की ही चमक है, शिर स्वर्गलोक है इसका जिसमें घनमाला ही केश हैं, सूर्य-चन्द्र नेत्र हैं, अग्नि ही आनन है और घ्राण अश्विनी कुमार है, पवन देव ही प्रकृति के प्राण अर्थात् श्वास-प्रश्वास हैं, स्वर्ग सुख ही प्रकृति का मधुराति मधुर भोजन है, अमृत ही जल है, दिक्पाल कर्ण हैं, द्युलोक में सबसे ऊँचे और सबसे नीचे का लोक, ऊपर-नीचे के ओष्ठ एवं अधर है। प्राणियों का परमार्थ भूलकर स्वर्ग-सुख में प्रकृति प्रबलता से रँगे रहना

इसका सुखी रहना है, परम प्रसन्न रहना ही उपर्युक्त नर्तकी का हास्य है, अन्तरिक्ष ग्रीवा हैं, नक्षत्र ही इसके आभूषण हैं, जीवों को स्वाधीन करके स्वेच्छानुसार उनसे कर्म कराने का कौशल्य ही इसके हाथ हैं। आकाश के भवन में रहने वाली इस मायाविनी के शरीर का मध्य भाग मृत्यु लोक है, जिसमें पर्वत माला स्तन मंडल है और वहाँ से निकली हुई नदियाँ ही दूध धारा हैं जिससे चराचर जगत रूप बालकों का पोषण होता है, पृथ्वी ही इस प्रकृति का उदर है, पृथ्वी में प्राकृतिक सरोवर आदि निम्न गर्त नाभि है और समुद्र इस नर्तकी की मेखला है, इसके शरीर का अधोभाग (कटि से नीचे का भाग) पाताल है जिसमें भोगावती पुरी, प्रकृति का जघन प्रदेश है। जड़-चेतनात्मक जगत को सुख-दु:ख, हानि-लाभ, जय-पराजय, निन्दा-स्तुति, मान-अपमान और जरा मरण के दृश्य को दिखाना, इस नर्तकी की भाव-भंगिमा एवं नर्तन-क्रिया है इस प्रकार अपने आपात रमणीय सुखावह सौन्दर्य से त्रिभुवन को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल सिद्ध हो रही है। प्रकृति और जीव के संयोग से दृश्यमान जगत, द्रष्टा का विषय बन रहा है, इसके अतिरिक्त और वस्तु कुछ नहीं है। परब्रह्म परमात्मा संसार से निर्लिप्त अन्तर्यामी रूप से साक्षिमात्र सबके बाहर भीतर आकाशवत् परिपूर्ण हैं। माया के बन्धन से वही जीव मुक्त हुये हैं, होते हैं और होंगे जो मायापति सबके अन्तरात्मा परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान की शरण सर्वभावेन ग्रहण करके शरणागति के विशुद्ध स्वरूप की रक्षा करते हुये, सर्वथा समर्पित रहते हैं। मायापति के अनुकूल रहने पर माया का प्रभाव उन पर कुछ नहीं पड़ता जैसे नट के सेवक पर नट की सकाशता से होने वाले जादूगरी के खेल का। मुक्ति भवन में रहने वाले जीवन मुक्तों की ओर तो माया दृष्टि डालने में समर्थ नहीं हो सकती कि पुनः मुक्ति-दाता के आवास सिद्ध-सदन की ओर··· इस भवन का स्मरण करके प्रकृति कम्पितवदना बन जाती है। अपने स्वामी के संकेत से, स्वामी की प्रसन्नता के लिये बिना विश्राम नृत्य कारिणी स्वप्रयोजन हीना, प्रकृति के स्वरूप को समझकर उसमें मोहित होना नहीं चाहिये जैसे बुद्धिमान पुरुष जादूगर के खेल को देखकर, उसे मनोरंजन मात्र असत और अविद्या रूप समझ लेता है अतः वह खेल उसको अपने मोह-बन्धन से बाँधने में समर्थ नहीं होता किन्तु जो प्रकृति को मात्र परमात्मा की भोग्य वस्तु न समझकर, उसके स्वयं भोक्ता बन जाते हैं, वे माया के चंगुल में फँसकर न तो उबरते और न प्रकृति के भोक्ता बन सकते क्योंकि प्रकृति के एकमात्र भोक्ता प्रकृति-पति, परमेश्वर ही हैं, जो अपने को प्रकृति के भोक्ता स्वीकार करते हैं, उन्हें मातृ-भोगी के समान प्रायश्चित्त

हीन पाप का परिणाम भोगना अनिवार्य हो जाता हैं अस्तु, माया के आधीन न बनकर, माया-पति पारतन्त्र्य को ग्रहणकर, अपना कल्याण कर लेना ही विद्वानों के बुद्धि का वैशद्य है।"

"अहो ! अपने श्याल के भाम ! कृपा कर यह बतलायें कि प्रकृति-प्रदेश में रहने वाला प्राकृत-प्राणी, प्रकृति सम्बन्धी वस्तुओं के बिना विनियोग स्वदेह की रक्षा करने में कैसे समर्थ हो सकता है अतः शरीर के न रहने से परमार्थ-शोधन सर्वथा असंभव और अशक्य है अस्तु, परमार्थ भ्रष्ट जीव, चेतन होकर भी अचेतन हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं।"

'श्याल-वधू की शंका सर्वथा उचित है किन्तु वह सुबोधिनी निमिकुल नारी की नहीं है अपितु पर-दुख असहिष्णुनी परहितैकतत्परा का यह प्रश्न, अज्ञ-प्राणियों को बोध-विग्रह बनाने के लिये है अतः श्रवण करें.. ...

बच्चा जैसे पिता की भोग्या माँ का स्तन पकड़कर, दुग्ध जिस भाव से पीता है तथा कृषक का सेवक जिस प्रकार सर्व कृषि-अन्न को मालिक को समर्पण कर देता है और प्रसाद रूप दिये हुए अन्न को लेकर, जीवन-निर्वाह स्वामी की सेवा के लिये करता है, उसी प्रकार प्रकृति-सम्बन्धी भोग्य-वस्तु मायापति पुरुषोत्तम भगवान को सर्वभावेन समर्पित कर, प्रसाद बुद्धया उसे मात्र जीने के लिये ग्रहण करें, वह भी उन्हीं मायापति की सेवा की योग्यता प्राप्त करने के लिये जैसे, जगत में पुत्र माता-पिता के द्वारा पला-पोसा, पुनः उन्हीं की सेवा की योग्यता प्राप्त करके, अपने जन्म को सुफल समझता है, इसी प्रकार अनासक्त भाव से प्रकृति के साथ रहकर भी, जीव प्रकृति विनिर्मुक्त ही है।"

[सीताकान्त की यथार्थ सिद्धान्त वार्ता को श्रवण करते ही, सीताग्रज-वल्लभा ध्यानस्थ दशा में स्थित होकर पुनः कुछ क्षणों में जब प्रकृतिस्थ हुईं तब सीतावल्लभ ने कहा......]

"अहो ! श्याल-वधू की आश्चर्यचकित-सी मुद्रा अनवसर पर अकस्मात् कैसे दृष्टिगोचर हो रही है उनके प्राणातिथी को ? यदि अनधिकारी के आसन में आसीन उनका सम्बन्धी न हो तो उसके श्रवणों तक उक्त घटना के रहस्य का उद्घाटन पहुँचा जाने में विलम्ब का दर्शन न होना चाहिये क्योंकि उसके मन में शीघ्र सुनने की उत्काहट उत्पन्न हो गई है, भूखे को भोजन देना, भोजनदाता का सहज धर्म होता है, क्षुधातुर की आतुरता को सह लेना, अधर्म को आमन्त्रण देना है अतः श्रीधर

राजकुमारी जू धर्म-प्रिय होने से अधर्म का स्पर्श नहीं करेंगी, उनके ननदोई की यह परम प्रतीति है।"

"सीताकान्त को चिदाकाश-स्थित सीता की कमनीय केलि का प्रकार अविदित नहीं हैं क्योंकि वहाँ वे भी अपने अप्रतिम अगोचर वैभव का अनुभव द्रष्टा को करा रहे थे किन्तु पूँछने पर उनके प्रश्न का उत्तर देना, उनकी श्याल-वधू का स्वरूपानुकूल सेवा करना है, जिससे सेव्य का मुखाम्भोज प्रफुल्लित होकर, वक्ता को परम सुख के आसन में स्थित कर देगा। वैदेही की भाभी ने ध्यान के आकाश में उदित वैदेही-वल्लभ के सर्वाङ्गीण सादृश्य को लिये हुये एक पुरुष को देखा, दूसरे क्षण उसे विदेह-वंश-विभूषण की अनुजा के रूप में परिवर्तित देखा पुन. दूसरे क्षण पुरुष स्वरूप में द्रष्टा का विषय बना, इस प्रकार का परिवर्तन कई बार अनुभव में आकर पुनः युगल रूप में स्थैर्याभास की प्रतीति होने लगी तदनन्तर वैदेही के सर्वभावेन आकार वाली आदि शक्ति से, आह्लादिनी, संवित और संधिनी शक्ति त्रय का आविर्भाव द्रष्टा का विषय बना पुनः श्री-भू-नीला-लीला-विद्या-अविद्या आदि अनन्त अंगजा शक्तियों का प्राकट्य, अनन्तानन्त ब्रह्माण्डों की रचना एवं उनके पालन-संहार की लीला करके, परम पुरुष को दर्शनाह्लाद देने के लिये हुआ एवं प्रकारेण चिद् भीति पर चित्रित दृश्य को देखकर हर्ष और आश्चर्यातिरेक की स्थिति में स्थित हो गई, वैदेही की भ्रातृ-वधू। सम्प्रति उस दृश्य से दूर होकर तत परम पुरुष के सर्वथा सादृश्य को लिये हुये, वैदेही वल्लभ का दर्शन कर रही है। अहो! वह कौन देश था जहाँ उस दृश्य का दर्शन वैदेही के भ्रातृ-वधू को हो रहा था।"

"निमिकुल नारी को सहज ही सर्वज्ञान सुलभ है किन्तु अपने मेहमान के मुख से कुछ भी श्रवण करना उन्हें अमृत-सा प्रतीत होता है, अतः श्रवणों को संतृप्त करें वे, उनका आहार देकर। श्याल-वधू का देखा हुआ दृश्य उनके आत्माकाश में उदित हुआ था, आत्मा ही द्रष्टा था और दृश्य भी आत्मा के अतिरिक्त और कुछ न था, प्रकृति और पुरुष-विषयकवार्ता प्रथम अपने आत्म सम्बन्धी के मुख से सुन रही थीं वे। उसकी सत्यता का साक्षात् करा देने के लिये, परब्रह्म परमात्मा की अनुकम्पा हो गई लक्ष्मीनिधि-वल्लभा पर, इसलिये उन्हें आत्मा में ही यथातत्व का दर्शन हो गया, इसी हेतु से उनका सम्बन्धी श्याम कहा करता है कि सिद्धि के सम्मुख असिद्धता को अपना मुखड़ा दिखाने का साहस कभी न होगा।"

"चलिये ! बहुत बड़ाई की गहरी खाई में उस अबला को न गिरायें, सीता की भाभी ने अपनी ननँद के बल से अपने को सदा सुरक्षित पाया, लगे मान-विद्या का प्रयोग करने. जिस प्रकृति का स्वरूप निरूपण प्रथम सीताकान्त कर रहे थे क्या उसी से प्रभावित करने की सोच रहे हैं मायापति ! सीताकान्त ने अपने संकल्प से सिद्धि को चिद् स्थित करके आत्मदेश में उपर्युक्त दृश्यों का दर्शन कराया, उनके अतिरिक्त कोई न था वहाँ, उन्हीं में सारे चित्रों को चित्रित देखा है द्रष्टा ने। जय हो प्रकाश को अँधेरे में छिपाने वाले चतुर चूड़ामणि की ! जय हो प्रकृति के परदे से अपने को छिपाने वाले चौर्यकलाविद की ! सेवकों से एक न चलने वाली क्रिया के कर्ता नवलनट नागर की ···जय हो ! जय हो !! जय हो !!!

इस प्रकार श्रीलक्ष्मीनिधि जी अपनी वल्लभा के मुख से राम कथा श्रवण कर, स्वयं श्री राम-मुख विनिश्रित प्रकृति-कार्य-साधना व उसके स्वरूप को श्रवण कराने के लिये, श्री राम कथा के वक्ता की मुद्रा में पुनः स्थित हो गये।

× × ×

३६

प्रभावपूर्ण प्रकृति-प्रहरी से सुसज्जित एवं सुरक्षित सिद्धि-सदन सर्वभावेन सुरम्य तथा सुगन्धित शरीर वाली सुर-सुन्दरियों को अपने अंचल के प्रकृति प्रदेश में विहरने के लिये प्रलोभित कर रहा है। भवन के सप्ता-वरणों में चतुर्दिक लगी हुई प्रकृति की प्रदर्शनी अपनी नव्यता-भव्यता-दिव्यता और सात्विकता के कारण, सभी सुर-नर-मुनियों के मन को आकर्षित करने वाली स्वाभाविक सिद्ध हो रही है, यही कारण है कि गगन-गामी विबुधों के विमान सिद्धि-सदन के ऊपर वाले आकाश में स्थित होकर वहाँ की प्रकृति-प्रभा के प्रकाश से सात्विकता की परिवृद्धि करके ही आगे बढ़ते हैं। अहो ! विमानाकार भवन की सभी कक्षाओं में लगे हुये, बड़े वृक्षों के तपसी समाज ने एक पैर से खड़े होकर उर्ध्व बाहु, कितनी कठिन तपस्या में स्वयं को निमग्न कर दिया है, आश्चर्य ! इसकी स्कन्दों के मध्यस्थल की आँखें अपलक आकाश की ओर लगी हुई हैं, लगता है कि ये तप-फल प्रदाता इष्ट के दर्शन की समुत्सुका हैं। अहो ! इन विशालकाय वृक्षों की तपस्या इतनी अत्यधिक हो गई है कि इनके शिर से पुष्पों का सुगन्धित धूम्र, अग्नि समेत निकल रहा है, इन तपस्वियों को यह सुधि स्वप्न का

विषय भी नहीं बनती कि हमारे सारे शरीर में जहाँ-तहाँ पक्षियों ने अपना वास स्थान बना लिया है, इतना ही नहीं शरीर में उनके द्वारा मल-मूत्र कर देने का पता नहीं है, इनकी तितिक्षा तो महान से महान तपस्वियों से आगे स्थान पाने की सर्व समय अधिकारिणी है। कठिन से कठिन कड़ाके की वर्षा, ठण्डक व गर्मी क्यों न हो किन्तु ये सर्वथा सहिष्णुता के साथ उसका समादर करते हैं। इन तरु-तपस्वियों के शरण में कोई अतिथि असमय में भी आ जाय तो उसका आतिथ्य किये बिना ये अपने को नहीं सहते। छाया-पुष्प-पत्र-फल-समिधा-मधु आदि से अभ्यागत का सादर निर्पेक्ष संपूजन करके ही प्रसन्न होते हैं। इनकी सहिष्णुता एवं अतिथि सेवा विश्व-वन्दिता है, इन भूरुह-भक्तों के गृह कभी-कभी अभाव ग्रस्त असाधु अतिथि आकर इन्हें कष्ट का अनुभव कराने में प्रयत्नशील हो जाते हैं, मार-काट करके सम्पत्ति छीनने पर भी, इन तपस्वियों के हृदय में शान्ति का साम्राज्य ही स्थित रहता है, उलटे मारने वाले को अपनी सम्पत्ति देकर उसका सत्कार करते हैं, इन वृक्ष-वैष्णवों की तपस्या सभी सुर-नर मुनि समाज को समुन्नतशील बनने की प्रेरणा अपनी चर्या से सर्वदा देती रहती है। वाक-मौन, काष्ट-मौन इनका देखकर बड़े-बड़े मौनी लोगों को दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। मच्छर, बिच्छू, सर्प, आदि दंशक जीव, इनकी देह में चढ़ जाते हैं किन्तु ये तरुवर-तपस्वी न तो कुछ विषैले जीवों से बोलते हैं और न उन्हें हटाते हैं, उलटे उन्हें अपने शरीर में लिपटे रहने देते हैं. अस्तु ब्रह्म-सृष्टि में इनके समान यही तपस्वी हैं। बेचारे शुद्ध गोमय जल और वायु का ही मात्र आहार करके जीवन धारण करते हैं। मृत्यु के पश्चात् अपने देह में आसक्ति न रखने वाले महानुभाव अपने सर्वाङ्ग शरीर को पर हितार्थ में आने का संकेत मूक भाषा में कर जाते हैं।

मध्यम श्रेणी के युवा वृक्ष लता की ललिता नारी को अपने अङ्गों में आलिङ्गित किये हुये, दो से एक बनकर गृहस्थ धर्म का पालन शास्त्रानु-मोदित कर रहे हैं। गार्हस्थ धर्म के आचरणों को अपनाकर ये आचार्यवान अपने को होने का संकेत दे रहे हैं, तभी तो घर में रहते हुये उपर्युक्त वान-प्रस्थ और सन्यासियों के आचरण पूर्ण रूपेण अपने में आरोपित कर लिये हैं। हाँ! यह बात अवश्य है कि सुन्दर, सुडौल और हरे-भरे होने से इनके मुख में प्रसन्नता की रेखायें सदा दृष्टिगोचर होती रहती हैं, उपर्युक्त तरुवर तपस्वियों की भाँति उदासीनता की रेखायें ये अपने मुख में प्रतीत नहीं होने देते। अपनी प्रशंसा व सम्मान से इन्हें कोई स्व-प्रयोजन नहीं है तथा

वानप्रस्थी व सन्यासी के आश्रम में प्रवेश करने के लिये छिपे-छिपे धीरे-धीरे तैयारी भी कर रहे हैं। ऐसे उदार गृहस्थों के आचरणों को देखकर ही शास्त्र बोल उठे, 'धन्यो गृहस्थाश्रमः'। ये तरुण तरुवर अपने आचरण से सुर-नर-नाग सभी गृहस्थों को मूक शिक्षा का दान देकर, उन्हें उच्च जीवन प्रदान करने की कामना से पैर उठाये खड़े हैं, परहितैक रस जीवन व्यतीत करने वाले भूरुह भक्तों की जय हो .... जय हो..... जय हो !

आलबाल में स्थित बाल-विटपों को क्या कहना है। ये अपने बाल चापल्य एवं बाल सौन्दर्य से बड़े-बड़े शान्त सौन्दर्य विग्रह वालों को भी, अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रहते, सुन्दर-सुगन्धित पुष्पों के वस्त्राभूषणों से आभूषित इनके अङ्गों की श्री शोभा, पोषक पिता के हृदय में स्थित वात्सल्य रस के कोष को परिवृद्धि कर देती है, दर्शकों के नेत्र आत्म-प्रिय इन बाल-वृक्षों को इनके आसन सहित अपने अंकों में लेकर लाड़-प्यार करते हुये, जाड़ा-गरमी से बचने के लिये, कभी धूप और कभी छाँह में बैठा देते हैं। गर्मी में इन्हें तीन बार स्नान कराना और जाड़े में गर्म कपड़े धारण कराना पोषक-पिता के प्यार का परिचायक है। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की कहावत को चरितार्थ करने वाले ये बाल विटप, अपनी श्री शोभा से सम्पन्न कहीं भी बैठकर, उस प्रान्त को शोभा सदन बना देने में बड़े कुशल हैं, इनके पत्रावलियों के केशों में गुम्फित पुष्पों के शिरोभूषण, घन बिच विद्युत की आभा उत्पन्न कर रहे हैं, इनका सुकुमार बाल शरीर स्वयं के सौरभ से वायु एवं अपने निकट प्रान्त से निकलने वाले प्राणियों को सुरभित बनाने में सर्वथा समर्थ है, अपने कुल के नैसर्गिक स्वभाव के कारण अपनी सम्पत्ति से अतिथि की सेवा करने में अति उदारता का परिचय देने में हिचकिचाते नहीं हैं अपितु अपना सौभाग्य-समझकर झूमने लगते हैं।

अहो ! सुर एवं सुर-सीमन्तिनियों से स्पृहणीय सिद्धि-सदन के उद्यान को अपनी तपोभूमि बना लेने से, मुक्तियाँ इन्हें वरण करने के लिये ललचाये लोचनों से देखती होंगी किन्तु सिद्धि-सदन के सम्प्रयोग से, सिद्धि के ध्येय सिद्ध धाम के सिद्धेश्वर के मनोरञ्जन करने के लिये उनके परिकर भाव को प्राप्त हुये बिना न रहेंगे ये, ऐसा इनमें रमने वाले राम के बुद्धि का विनिश्चय है। सिद्धि-सदन के विशाल परिकोटे के उदर में यत्र-तत्र विनिर्मित सरसी-सरोवर एवं सरिताकार नहरें, नाभि और छोटी-बड़ी आंतों की भाँति प्रतीत हो रही है अथवा मानसरोवर आदि

सरोवरों और अलकनन्दा गंगा का सर्वथा सादृश्य समक्ष समुपस्थित हो रहा है किन्तु ये सब प्रकृति-प्रदेश में होने से अर्थात् विधाता से विनिर्मित होने से, अप्राकृत विधि-विस्मयोत्पादक सिद्धि-सदन की उपमा की योग्यता नहीं रखते, उनकी उपमा देकर उपमेय का अनादर ही होगा अतः यहाँ के उद्यान, सरसी, सरोवर और नहरों के स्वरूप को समुज्वल रखने वाली उपमा, शुद्ध सत्व विशिष्ट परम धाम में स्थित, परमात्मा की लीला के सहयोगी उद्यान-सरसी-सरोवर और सरिताओं के साथ की जाय तो स्वरूपानुकूल है, फिर भी रसानन्द की अनुभूति कराने में यहाँ के उक्त उद्यान और जलाशय वहाँ से अधिकतम सुखप्रद सहज सिद्ध प्रतीत होते है सिद्धि के रसिकेश्वर को। यहाँ के पराग पूर्ण पुष्पित पंकज एवं भ्रमरों की श्रेणियों का उन पर मेड़राना, राम के मन-मधुप को एक बार वहाँ-पहुँचा देता है किन्तु दूसरे क्षण में यहाँ के स्वारस्य की स्मृति, सिद्धि-सदन के प्राकार के अभ्यन्तर देश में एक रस रमने के लिये राम के चित चंचरीक को बाध्य कर देती है ! राम के मन को रमाने वाले सिद्धि-सदन के आरामों में यत्र-तत्र कृत्रिम सूर्य-चन्द्र और नक्षत्र प्रकाश वितरण के लिये प्रकाश पूर्ण मणियों से विनिर्मित किये गये हैं, वे सब भ्रमोत्पादक सिद्ध हो रहे हैं लगता है कि वे आकाश की शून्यता व गर्मी से अकुलाकर, यहाँ के रमणीय प्रकृति प्रदेश में विहार करके अपना श्रम दूर करने के लिये आये हैं। भूरुहों से निवेदन करते से प्रतीत हो रहे हैं, उनका कहना है कि भूमिजा की भाभी की इस वन-भूमि में सदा रहने के लिये कोई साधन हो तो उसे हम आर्त साधकों को बतलाने की कृपा करें क्योंकि जिस साधना के सहारे, आप लोगों को यहाँ के वास का सौभाग्य सुलभ हो गया है, उसका ज्ञान सम्यक प्रकार से आपके सभी समाज को होना सुनिश्चित है एवं प्रकारेण सिद्धि-सदन के संभोक्ता से स्व-सम्बन्ध होने से रास का गौरव समुन्नतशील है।''.........श्री वैदेहीवल्लभ ने कहा।

''सिद्धि-सदन का वैभव स्वयं सर्व सिद्धों के सर्वेश्वर का है, उसमें सिद्धि एवं उसके स्वामी का कुछ नहीं है, न था, न है, न रहेगा भविष्य में। व्यवहारिक वाक्-पटुता से भी वाक्-पति को उक्त राम के रमाने वाले वैभव को स्वयं का न कहना क्या प्रति सम्बन्धी (श्रोता) की परीक्षा के लिये है ? अहो ! ऐसे परीक्षक की परीक्षा में सफलता उसी को वरण करेगी, जिसे वह स्वयं वरण करेगा अन्यथा सभी परीक्षार्थी सफलता की शून्य स्थिति का ही आलिङ्गन करेंगे। उक्त सदन व तत्सम्बन्धी सम्पत्ति

सहित उसका अधिपति अनादि काल से उसका है, जिसको भूत-भावन भगवान भोलेनाथ और आचार्य प्रवर योगिवर्य श्री याज्ञवल्क्य जी ने वेद सम्मता वाणी से अपने एक अबोध मैथिल बालक को उसका भाम कहकर संकेत किया था तथा उसकी भगिनि को उस अद्वय तत्व की अचिन्त्य आह्लादिनी शक्ति का स्वरूप बताया था पुनः व्यवहार दृष्टि से भी वैदेही के वधूकाल में जब वैदेही-बन्धु ने स्व के सहित स्व-सम्बन्धी सर्व वस्तुओं (अहं-मम) को ग्रहीता रूप वक्ता के पाणि-पंकजों में कुश-जल-अक्षत लेकर, भावी अधिकार के सहित समर्पण कर दिया था तब तो अन्तर्यामी और बाह्ययामी को उपर्युक्त वार्ता का विनियोग करना उपयुक्त नहीं था परन्तु महान के मुख से निकली हुई वाणी में कोई महान अर्थ अवश्य गुप्त रहता है यदि अधिकारी समझें तो रहस्यार्थ का उद्घाटन करने की अवश्य कृपा हो। कहीं आत्मापहरण और दत्तापहरण के महान प्रायश्चित हीन पाप का स्पर्श सीताग्रज को तो नहीं हो गया।''.........लक्ष्मीनिधि ने कहा।

''सिद्धि कुँवरि के कान्त को असिद्धता कभी मुख दिखाने का साहस नहीं कर सकती। सहज ज्ञानी को अज्ञान, सहज वैराग्यवान को राग, और सहज स्वरूपज्ञ को देहाभिमान तथा सहज असंसारी को संसार का स्पर्श व ज्ञान, उसी प्रकार नहीं होता जैसे सहज प्रकाश पुञ्ज सूर्य को अन्धकार नहीं स्पर्श कर सकता।'' राम ने कहा।

''सिद्धि के स्वामी से उनके भाम का यह कथन कि ''सिद्धि-सदन के वैभव के संभोक्ता के सम्बन्ध से, उनके सम्बन्धी का गौरव समुन्नतशील है।'' यह उनका अनुमानित अर्थ श्याल के स्वरूप के अनुगत नहीं है, अपितु उसके विपरीत है, सपत्नीक सीताग्रज सर्वभावेन अपने सीताकान्त का है। सरहज-श्याल की निर्मल प्रेम-प्रक्रिया एवं अकारण अपने सेव्य की सकल विधि कैङ्कर्य-कुशलता तथा सर्वभावेन विशुद्ध सहज समर्पण-स्थिति का अनुभव रूप अनुकूल भोग प्राप्तकर, भोक्ता का प्रसन्न मुखाम्भोज बना रहना ही उनके गौरव-परिवृद्धि का हेतु है और भोक्ता के मुखाम्भोज के विकास से उक्त दम्पति एवं उनकी अंगात्मिका वस्तुओं का अत्यधिक मुखकमल विकसित बने रहना अर्थात् भोक्ता की प्रसन्नता से भोग्य का प्रसन्न होना ही, उसके समर्पित स्वरूप के सिद्धि का साक्षात् प्रमाण है।'' ....सीताग्रज ने कहा। [इस प्रकार सिद्धि के स्वामि की और सिद्धि के सहज सिद्ध स्वरूप के अर्थ-रहस्य को प्रकट करने वाले, श्याल के भाम की वाक्योक्ति थी।]

"अंगी और अंग में व्यवहारिक वाणी द्वारा कभी व्यवहार में पृथक-पृथक कहने पर भी, दोनों का अविनाभावी सम्बन्ध सदा स्थित रहता है, उसी प्रकार हम दोनों को उक्त ज्ञान का विषय बने रहना औचित्यानुरूप है, संशय के बन में भ्रमण कर वहाँ की कटीली झाड़ियों से उलझने से अपने को सदा बचाते रहना ही स्वरूपानुरूप धर्म है। अच्छा होगा कि हम लोग यहाँ बने हुये आसनों में बैठकर एकाग्र चित्त से यहाँ की प्रकृति-प्रभा का दर्शन करें जो चित्त की चंचलता को सर्वथा शमन करने की परमौषधि है।"............राम ने कहा।

[भाम के श्याल अपने राम के कथनानुसार बिना मीलित-नेत्रों से अचित बनकर दृश्य का दर्शन करने लगे। आँखें अपलक हो गईं, आश्चर्य-चकित मुख-मुद्रा को देखकर सीताकान्त ने सीताग्रज के मुख को अपनी ओर फेरकर कहा............]

"क्यों ? असमय में अकस्मात् विस्मायक चिह्नों से चिह्नित होने का कारण क्या है ? मस्तिष्क में कोई उलझन तो नहीं आ गई ?"

"अहो क्या देख रहा था ? अब क्या देख रहा हूँ ? प्रथम कहाँ था ? अब कहाँ हूँ ? अपने भाम राम मेरे समीप हैं या सम्मुख कुछ दूरी पर ? आश्चर्य !........आश्चर्य !! सामने अपने श्यामसुन्दर के हृदय के भीतर, सिद्धि-सदन को सभी दृश्यों समेत एवं अपने आपको अपने भाम के साथ नेत्रों का विषय बना रहा हूँ।"

"अरे भाई ! आपका सखा तो आपके समीप ही स्थित है, यही तो आश्चर्य है, सखे ! आपका दर्शन किया हुआ दृश्य, द्रष्टा को यह बता रहा है कि सिद्धि-सदन अपने सर्व अङ्गों समेत राम के हृदय में स्थित है और राम सिद्धि-सदन का आतिथ्य स्वीकार करके, कब से अपने श्याल-सरहज के आत्यान्तिक स्नेह के अन्न को पा-पाकर जी रहा है, कहाँ तक कहा जाय वह उक्त सदन के सत्कार सुख से वञ्चित न होने के लिये एक पैर अन्यत्र जाने का स्वप्न नहीं देखता।" रसिकेश्वर राम ने कहा।

"समझ गया आपका सखा कि यह दृश्य आपके संकल्प का साक्षात् स्वरूप है एवं सत्य-संकल्प की कही हुई उपर्युक्त वार्ता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।"............लक्ष्मीनिधि ने कहा। [मन्द मुसुकराते हुये सीताकान्त, सीताग्रज को हृदय से लेकर उनको हर्षातिरेक की स्थिति में स्थित कर स्वयं स्थित हो गये।]

इस प्रकार सिद्धि जी से, सिद्धि कुँवरि के सदन के प्रति राम का अपरिमेय प्रेम बताकर, लक्ष्मीनिधि जी अपनी वल्लभा को पुनः कथा कहने की प्रेरणा देने लगे।

× × ×

४०

मिथिला की महाराज्ञी का महल सर्वाभ्युदयों एवं मांगल्यों का सर्वभावेन साक्षात् संग्रहालय है। भवन-निर्माण में कलाकारी का प्रदर्शन, विश्वकर्मा सहित विश्व स्रष्टा को आश्चर्य के सिन्धु में गोता लगाने के लिये बाध्य कर देता है। काम की कला भी उस अलौकिक कला के समक्ष पंगु ही नहीं अपितु विवस्त्र प्रतीत होती है। मणि-माणिक-वैदूर्यादि से जटित भवन की स्वर्ण-भीतियों पर दिन के सूर्य-किरणों के संयोग से कोटि-कोटि सूर्यों की आभा स्वर्णमय सुमेरू की चमक-दमक से तिरस्कृत-सी हो रही है, रात्रि में नक्षत्र मंडल से युक्त निशानाथ का प्रतिबिम्ब पड़ने से, सुनयना-सदन को द्वितीय आकाश के समान समझने में कोई अवरोध आड़े नहीं आता। मणि जड़ित-प्राङ्गण में स्थित एक रत्न सिंहासन में सिद्धि की सासु सर्वाङ्ग सुन्दरी सलोनी सीता को अपने अङ्क में लिये हुये लाड़-प्यार कर रही है, सखी-सेविकायें सेवा में समुचित साज लिये यथास्थान समुपस्थित हैं, आँगन में चारों ओर किनारे-किनारे स्वर्ण-गमलों में आरोपित विविध प्रकार के सुरभित सुमन अपनी शोभा व सुगन्ध से, सर्वचित्त को चंचरीक बनाने की सेवा करने में अति निपुण प्रतीत हो रहे हैं। सिंहासन के सहित श्री सुनयना जी तथा तदुत्सङ्ग संस्थिता श्रीसिया जू का प्रतिबिम्ब सपरिकर मणि जटित कनक-भीत पर पड़ने से अनेक स्थलों पर उस झाँकी का दर्शन ऐसा दृष्टिगोचर हो रहा है जैसे किन्हीं सजीव चित्रों की नकल करके स्रष्टा ने प्रचारार्थ अर्थात् अपनी कला कुशलता का परिचय संसार के सम्मुख उपस्थित करने के लिये भीत पर अपने नकली चित्रों को लटका दिया है, फूल के गमलों का भी प्रतिविम्ब पड़ने से भीत की भूमि में लगी हुई वाटिका का भ्रम उत्पन्न होता है। सन्ध्या का सुहावना समय है, सदन का सौन्दर्य श्रीसिया जू के विहरने से विधि-हरि-हर के सदन-सौन्दर्य को विलज्जित करके बेचारे को सिर उठाने का समय नहीं दे रहा है। मणि-दीपों से विभ्राजित भवन, प्रकाश का पुञ्जीभूत दिवाकर-सा प्रतीति का विषय बन रहा है। शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु लाड़िली विदेह-वंश-वैजयन्ती

की सेवा कर स्वयं को कृतार्थ समझ रहा है। रातरानी श्री किशोरी जू के चन्द्र-मुख का दर्शन करके..........अहो! अनोदित गगनगामी चन्द्र के न रहने से उसके विरह का भाव एवं प्रकाश का अभाव प्राप्त होने पर भी, प्राङ्गण में प्रसन्न वदना दिखाई दे रही है, प्रतीति होती है कि श्रीराम नाम के पीछे चन्द्र नाम लगा रहने के कारण, निशानाथ के प्रति कृपा होने से उनकी निशा पर भी, श्री किशोरी जू की अकारण कृपा हो गई है तभी तो अभाव में भाव का दर्शन कर कृतकृत्य हो रही है रात्रि।

उक्त बेला में वैदेही के मुखचन्द्र की चकोरी मिथिला की महारानी सुनयना कभी अपनी आत्मजा के प्रफुल्ल श्री मुख पंकज-पराग को पीती तो हैं किन्तु अतृप्ति की अनुभूति, उन्हें वरण किये ही रहती है, कभी किशोरी की कुंचित गभुआरी काली-काली केशावलियों पर अपना पाणि-पंकज फेर-फेरकर आसक्तमना प्यार करती हैं, कभी अपनी लाड़िली के लाल-लाल करतलों को निज के कर-कमलों में रखकर चूमती हैं, सुहलाती हैं, दुलराती हैं, कभी अपने हृदय में लेकर हृदय के भीतर रख लेने जैसी प्रीति में पगी हुई स्मृति शून्य हो जाती हैं। श्री अम्बा जी के भाग्य वैभव की प्रशंसा कर-करके, आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगती है।

"क्यों किशोरी? बार-बार सिंह पौर की ओर दृष्टि निक्षेप कर रही हो, कोई न कोई कारण अवश्य है लगता है कि लाड़िली लली का मन किसी प्रिय के आने की प्रतीक्षा में है तभी तो चित्त में चाञ्चल्य के चिह्न प्रत्यक्ष दृष्टि का विषय बन रहे हैं। कहो क्या बात है?"

'मैया की पुत्रवधू का अपनी सासु की वन्दना करके उनके अमोघ आशीर्वाद एवं लाड़-प्यार पाने का यही समय है, आपके समीप पहुँचने का अतएव समय के अतिक्रमण की समीपता आ जाने से अपनी भाभी के दर्शन-स्पर्शन व प्यार पाने के लिये उनकी ननँद त्वरान्वित होकर उनके पथ की ओर अपनी आँखों के पांवड़े डाल रही है। संभव है सीता की भ्रातृ-वधू भइया की सेवा संप्राप्त हो जाने से अपनी ननँद को विलम्बित बेला के कारण त्वरा उत्पन्न करने का कारण बनी हों। मइया से लिपटकर उनके हृदय-हार कर स्पर्श-करते हुये, साश्रु लोचना किशोरी ने कहा।"

"तो अब अपनी अम्बा के अङ्क में बैठने से अवनिजा क्या उकता उठी है? जिससे माँ का अपनी ओर मुख फेरने पर भी बार-बार भवन द्वार की ओर किशोरी के दर्शनोत्सुक नेत्र चले ही जाते हैं।"

"नहीं, नहीं ....जननी की क्रोड़ जानकी की सुख-सम्प्रदायिका, सर्वभयहारिका, सर्वदुःख दोष दारिका एवं परम प्रेम सारिका है, माँ का वातसल्य अन्यत्र अप्राप्य है जो पुत्र-पुत्री के जीवन की आधार शिला है। भूमिजा का भाग्य असमोर्ध्व है, क्योंकि ऐसी जननी त्रिभुवन में किसी सुर-नर-मुनि की नहीं है। माँ की गोद ही तो बच्चों को इन्द्रासन से शताधिक आनन्दप्रद सर्वभावेन सिद्ध होती है अतः उससे उकताहट का न होना स्वाभाविक है अतएव अम्बा के अंक से आपकी लड़ैती लली उकताई नहीं है अपितु सुख में समाई है। भाभी के आने पर जनक किशोरी और श्रीधर किशोरी मैया के क्रोड़ में बैठकर विलम्बित बेला तक, माँ के प्यार की अनुभूति करेंगी एवं मातु श्री को भी एक के स्थान पर दो, अपनी पुत्रियों के लाड़-प्यार से द्विगुणानन्द का सौलभ्य संप्राप्त हो जायगा अतः अयोनिजा की अम्बा को घाटा नहीं अपितु दूने लाभ का संयोग समीप है इसलिये मइया की लाभ-प्रदायक वस्तु को, अम्बा की ओर आने के समय उमंग भर उसे द्वार की ओर देखना और समयातिक्रमण को न सहना, आपकी बेटी के अनुरूप ही है माँ !"

"लाड़िली ! तुम दोनों भाभी-ननँद की परस्पर प्रीति पवित्र है जिसे देखकर तुम्हारी अम्बा को अतिशय आनंद की अनुभूति होती है, यह पूर्वजों का आशीर्वाद है कि भूमिजा जैसी पुत्री और सिद्धा जैसी पुत्रवधू निमिकुल का गौरव उच्च शिखर तक परिवर्धित करने के लिये प्राप्त हुई हैं, दोनों का सदा मंगल हो......सदा मंगल हो...सदा मंगल हो...।"

'अम्बा......अम्बा ! ओ अम्बा !! श्रवण करें, सखी-सेविकाओं के साथ भाभी जी के पदन्यास से उनके नवल नूपुरों की मधुर-मधुर ध्वनि, उनकी ननँद के कर्णों का विषय बनकर, हृदय में उमंग एवं उल्लास का संचार कर रही है।" "अवश्य......अवश्य ! वैदेही की भ्रातृ-वधू अपनी अलियों के साथ नित्य की भाँति, भर्तृ-माता का पादाभिवन्दन करने के लिये आ रही हैं। जय हो ! सदाचार-व्रत-पालिका, दुःख-दोष-दालिका श्रीधर कुमारी जू की"..................माँ की एक सखी ने कहा। मैया वह देखें, भैया की भार्या भव्य-भव्य भावों से भरी, भावना की साकार मूर्ति-सी अपनी कमनीय कान्ति के पूर्ण चन्द्र की सुधासिक्त किरणों से शीतल-सुखद प्रकाश बिखेरती हुई आ ही गई। [कहकर श्री किशोरी जी माँ के अंक से उतरकर दौड़ पड़ीं, सिद्धि जी के सम्मुख प्रसन्नता पूर्ण प्रफुल्ल कुमुदिनी की भाँति कनकोज्वला किशोरी, भाभी.......भाभी कहती हुई, सिद्धि जी की कटि में अपने करों की मेखला पहनाकर लिपट जाती

हैं। सिद्धि जी श्री किशोरी जू के अमानुषी-कल्याण गुण-गणों, शील स्वभाव एवं प्रेमल हृदय तथा काय-वैभव पर बलिहारी जाती है। हमारी लाड़िली जू का सदा मंगल हो, सदा मंगल हो! कहकर प्रेमाश्रु पूर्ण प्रेमावलोकनि के साथ अपने अङ्क में लेकर खूब प्यार करती हैं, भाभी-ननँद की अप्रतिम अलौकिक प्रीति देखकर, सुर-ललनायें पुष्प वृष्टि के साथ 'दोनों की जय-जयकार करके गगन को गुंजायमान कर देती हैं।]

पुनः प्यार से—किशोरी जू! अब अम्बा जी के समीप चलना चाहिये उनकी पुत्री व पुत्र-वधू को, क्योंकि उनके सुनेत्र हम दोनों की मिलनि से प्रभावित इधर ही को देख रहे हैं अतः विलम्ब से उनके समीप पहुँचना आपकी भाभी का अपराध होगा। हाँ, हाँ! हम लोग शीघ्र चलें अपनी अम्बा के पास क्योंकि पुत्र-वधू व पुत्री के बिना उन्हें एक क्षण कल्प का अनुभव कराता होगा भाभी जी!

[कहकर श्री विदेह कुमारी जू श्रीधर कुमारी की कराङ्गुलियों को पकड़कर, श्री सुनयना जी के समीप गवन करती हैं।]

शिर-नत सम्पुटाञ्जली आकर अपने चरण में शिर रखकर प्रणाम करती हुई, पुत्र-वधू को उठाकर, उनकी सासु सुनयना अपने हृदय से लगा-कर प्रेम चिह्नों से चिह्नित हो जाती हैं पुनः अपनी गोदी में लेकर अपने लाड़-प्यार से सिद्धि जी को, स्मृति शून्य-सी किये दे रही हैं। किशोरी! तुम भी आओ, अपनी माँ की क्रोड़ में बैठकर, उसे असीमानन्द की अनुभूति कराओ।

"लीजिये! आपकी लाड़िली अपनी अम्बा के लाड़-प्यार का अन्न एक ही थाली में पाने के लिये, भाभी के साथ आपके अङ्क के आसन में बैठ गई। क्यों भाभी जी! भैया की पुत्रवधू और पुत्री के उज्जीवन का आधार उनका वात्सल्य-रस से ओत-प्रोत पवित्र प्यार ही तो है, जिसे पा-पाकर इतनी बड़ी हो गई है सीता।"

"सर्वथा सत्य के साँचे में ढली हुई आपकी वार्ता में संशोधन करने का स्वप्न सरस्वती जी को भी नहीं स्पर्श करेगा। अम्बा जी के स्नेह-अन्न को पा-पाकर जीना ही तो आपकी भ्रातु-वधू का आनन्द है अन्यथा सिद्धि कृश-काय बनकर, असिद्धि की शय्या में पड़ी-पड़ी कराहती ही रहेगी।"

'पुत्री सिद्धा! एवं सीता! तुम दोनों मेरी नेत्र-पुतलियाँ हो। जानकी की माँ की जीवन-ज्योति हो। सिद्धि कुँवरि जैसी पुत्र-वधू तथा सीता जैसी

आत्मजा पाकर सुनयना को अब कुछ पाना शेष नहीं है। इसी प्रकार अपनी अम्बा की क्रोड़ में आसीन दोनों विशालाक्षियाँ मन्द-मन्द मुसुकराती हुई प्रेम भरी चितवनि से एक दूसरे को आकर्षित करती रहें, जिसे अपनी दृष्टि का विषय बनाकर सुनयना स्व के नाम के अर्थ को सिद्ध करती रहे।''

''अब मैं अम्बाजी की गोद से उतर कर, उन पर पड़ते हुए भार को हलका कर दूँ और नीचे बैठकर, जननी के अंक में विलसती हुई, अपनी प्राण प्रियतरा का दर्शन कर-करके लोचन-लाभ से वञ्चित न रहूँ, क्यों किशोरी जू ?''

''तो भाभी जी की ननँद क्या कम भारी है ? अतः पुत्री और पुत्र-वधू दोनों को ही उतर कर अपने भार से मैया के कोमलातिकोमल अङ्गों को पीड़ा न हो, प्रयत्न करना चाहिये।''

[दोनों के अंक से अलग होने के प्रयास पर......]

''अरी पुत्रियों ! अभी तो आपकी अम्बा को अपनी उत्सङ्गासिन नृपति-कुमारियों के लाड़-प्यार करने का अवसर प्राप्त हुआ है जिससे माँ की गोद का साफल्य स्वरूपानुरूप सिद्ध होता है अतएव सुनयना को भार की प्रतीति शून्य और आनन्द की अनुभूति अनन्त वरण किये हुए हैं अतः ऐसी ही बैठी हुई, भाभी-ननँद अपनी अम्बा के उरस्थल को लहलहाती रहो।''

(कहकर माँ दोनों को हृदय से लगाकर दुलार करती हैं।) अपने भवन में अपरिचित तीन दिव्य अङ्गनाओं को अपने सम्मुख आते देखकर, श्री सुनयना जी अपनी दोनों पुत्रियों के साथ उठकर ......'आइये...आइये पधारिये इन आसनों पर....ये पाद्यादि पूजन-सामग्रियों से आतिथ्य ग्रहण करने की कृपा करें।

'आप त्रय कमनीय काञ्चनाङ्गियों का दिव्य दर्शन प्राप्त हो जाने से हम तीनों का पूर्ण आतिथ्य हो गया फिर भी आपके प्रेम प्रसाद का शिरसा सम्मान करके, अपने भाग्योदय का सत्कार करेंगी ही हम विश्व-वन्दनीया, कमल-कान्ति-कमनीया, सर्व-शोक-समनीया मूर्तित्रय का सदा मंगल हो...सदा मंगल हो !

अहो ! जनक पाट महिषी माँ सुनयना जी के नयन ही मात्र सुन्दर हैं, जिसमें सुन्दरता को सुन्दर करने वाली अप्राकृत सौन्दर्य-सिन्धु-सार विग्रहा सर्वेश्वरी सीता समायी रहती हैं। धन्य हैं, मिथिला के महारानी का भाग्य-वैभव, जिसकी गोदी अवनि कुमारी विहार स्थली हो, वह त्रिभुवन वन्दनीया

एवं उमा-रमा-ब्रह्माणि सेविता बन जाय तो आश्चर्य ही क्या है ? विदेह वंश वैजयन्ती की अभिन्न हृदया लक्ष्मीनिधि-वल्लभा के विषय में कहना ही क्या है, जिनकी आत्मा शुभाङ्गी श्री सीता हों और जो श्री सीता जी की आत्मा हों, उस सर्व सिद्धियों की सिद्धि प्रदात्री सीता की आत्म रूपिणी सिद्धि कुँवरि की महिमा का अंकन करने में कौन समर्थ हो सकता है। हम लोगों का यहाँ आना सर्वभावेन सफल हो गया। त्रिभुवन-धन्या, त्रिभुजाकारा-पुत्री-पुत्र-वधू सह संशोभिता अङ्कोज्वला अवनिजा के अम्बा के दिव्य-दर्शन ने दीन दासियों को दिव्यता प्रदान कर, दिव्य देवि के आसन में आसीन कर दिया। जय हो कृपार्णवा सुनयनानन्दवर्धिनी श्री किशोरी जू के कृपा कोर की ·····।''

''देवि ! आप मूर्ति त्रय देवियों के दिव्य दर्शन से सपरिवार सीता की माँ सुनयना सुफल नेत्रा एवं सुफल मनोरथा हो गईं। अहो ! कौन-सी सेवा की जाय, जिससे आप तीनों की परम प्रसन्नता का साक्षात्कार सुनयना कर सके। प्रार्थ्य से प्रार्थना है कि आप मूर्ति त्रय का पूर्ण परिचय क्या जनक-जाया को प्राप्त हो जाना संभव है ? यदि असंभव हो तो अवनि कुँवरी की माँ आपश्री के दर्शन-दान एवं कृपा-कटाक्षपात् से ही सर्वभावेन सन्तुष्ट है, संकोच का स्पर्श दिव्य देवियों को न हो।''

''हम एक आशा-पाश से आबद्ध हैं, उस वन्धन की ग्रंथि, आपकी आत्मजा के आलिङ्गन मात्र से अविलम्ब उसमें अनवस्थिति आ जाने से अपने आप खुल जायेगी, जिससे हृदय-कमल, प्रसन्नता का जल प्राप्त कर प्रफुल्ल हो जायेगा, जिसके मकरन्द की सुगन्ध आपके मन-मधुकर के प्रतीति का विषय बनेगी।''

[अकस्मात्, अपरिचित आई हुई इन देवियों को प्रणाम कर, सिद्धा के सहित जनक-प्रसूता जानकी को, इनसे अमोघ आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिये।]

''लीजिये·······आप सबको ये युगल राज बालायें नमस्कार कर रही हैं, आप अब आशा-बन्धन से विमुक्त होकर, आनन्द की अनुभूति करें। जय हो····प्रकृति-प्रदर्शिनी की। नव्य भव्य भामिनियों की·······!''

प्रणाम करती हुईं भाभी-ननँद की मन-मोहिनी, मधुर मूर्तियों को बार-बार हृदय से लगाकर, आनन्दातिरेक के कारण तीनों देवियाँ विस्मृति की शय्या में शयन कर जाती हैं। श्री अम्बा जी उपचार द्वारा प्रकृतिस्थ करती हैं तदनन्तर बारी-बारी से अपने अंक में लेकर समवेत स्वर से मूर्ति-

त्रयी, मूर्तिद्वय का मंगलानुशासन कर, अनेक आशीर्वादों से उनकी वाङ्मयी सेवा करती हैं तथा उक्त मनोरथ की सुफलता से अपने को भाग्याधिका एवं कृतार्था समझती हैं तत्पश्चात् श्री जानकी की जननी का परिरम्भण चाहती हैं हम। कहकर सादर विश्व-वन्द्या श्री बिदेह वंश की महारानी का अङ्कभाल प्राप्तकर, अपने आने के श्रम को शान्त करती हैं। (मन्द मुसकान के साथ) करबद्ध कम्पित वाग्विसर्ग में··· ·····"हाँ, माँ ! याद आया, आपश्री अपने अतिथियों का परिचय प्राप्त करने की इच्छा से युक्त थीं अतएव अपने ध्यान की आँखों से 'हम कौन हैं ? कहाँ से आई हैं ? किस प्रयोजन से आई हैं ?" सहज ही सर्वथा अपने ज्ञान का विषय बना सकती हैं। अच्छा ·····आप तीनों अपने नेत्रों को कुछ क्षण के लिये झाँप लें।" लीजिये······देवियों की आज्ञा का अनुवर्तन अविलम्ब हो गया।

तीनों देवियों ने वहाँ की पावन पद-रज से तिलक करके राज-कुमारियों सहित सुनयना जी का अभिवन्दन किया और तत्क्षण कुछ दूर जाकर अपनी महिमा से अदृश्य हो गईं वे। आँख खोलकर अम्बा जी ! अम्बा जी !! देवियाँ कहाँ गईं ? श्रीधर किशोरी एवं जनक किशोरी ने कहा आश्चर्य से। अरे ! कहाँ गईं वे पूज्य देवियाँ इधर-उधर अन्वेषण करने पर, उनके अदर्शन ने अधीर बना दिया तीनों को।

"अम्बा जी ! ध्यान से इनका परिचय प्राप्त हो गया आपको ?" किशोरी ने कहा।

"हाँ, हाँ !! ये दिव्य देवियाँ जगत वन्द्या जगदीश्वरी उमा-रमा-और ब्रह्माणी थीं, ध्यान प्रदेश में इन्हें अपनी लली की सेवा में कर जोरे खड़ी पाया।"

इसी प्रकार श्री सिद्धि कुँवरि ने दोहराया और कहा कि, "धन्य है, हमारे भाग को, जो त्रिभुवन पूज्या त्रिदेवियों की सेव्या, अपनी ननँद की भाभी बनी, यह सब कृपालुनी श्रीकिशोरी जी के कृपा-वैभव का चमत्कार है।"

"चलें ···चलें, सास-पतोहू स्वप्न के दृश्य को सत्य के साँचे में ढालने का प्रयास न करें। मैं तो अपनी माँ की लाड़ली बेटी और अपनी भाभी की प्राण-प्रियतरा ननँद हूँ।" कहकर आपकी अनुजा ने अपनी भाभी से प्रेम पूर्वक लिपटकर, उसे आनन्द विभोर बना दिया पुनः कुछ देर में अम्बा के अंक में आसीन हो सुख से सो गईं। इस प्रकार अपनी प्राण वल्लभा से श्री किशोरी जू की अन्तर कथा श्रवण कर, पुनः लक्ष्मीनिधि जी अतृप्त मुद्रा में कथा-श्रवण के उत्सुक से जान पड़ने लगी।

× × ×

४१

सीता-सदन शोभा का पुञ्जीभूत साकार स्वरूप है, प्रतीति होती है कि इस अप्रतिम अनिर्वचनीय भव्य भवन की भासा की छुद्रांशिक किरणें बिखरकर, त्रिभुवन के ब्रह्म-भवन, इन्द्र-भवन, नागेश-भवन जैसे भवनों की श्रीशोभा को समुन्नतशील बनाने की स्वयं हेतु भूता है। प्राकृतिक सौन्दर्य-सार, अप्राकृतिक-सौन्दर्य के चरण-वन्दन और कैङ्कर्य कामना से, उसके मन्दिर के चारों ओर सज-धजकर ससमाज छावनी डाले पड़ा है। कभी न कभी चरणाश्रयी का मनोरथ सफल होगा, इस उत्साह से वह नित नवीन श्रृंगार से सुसज्जित अपने आनन का अनोखापन, उसी प्रकार प्रकट करता रहता है जैसे माधव से मिलने के लिये मधु का महीना। अहो! यह किशोरी जू का अनुपम गृह-उद्यान कितनी महिमान्वित एवं मनोरम है, जिसे श्रवण का विषय बनाकर, मनसिज के मन से विनिर्मित मुनि-मन-मथन हारी ऋतुराज की सार्वभौम साम्राज्य श्री संकुचित ही नहीं अपितु अतिलघुता को प्राप्त होकर काम की कृत्रिम कला को वैदेही के पिता विदेहराज की पुरी के बाह्य-देश के दर्शन की अनधिकारिणी समझकर, उसे दूर देश में ही अपने प्रभाव-प्रसार की अनुमति देती है। गृहवाटिका में विहरने वाले ये मृग-शावक जो राजकिशोरी जी की क्रीड़ा के लिये ही पाले-पोसे गये हैं, कितने सुन्दर सुहावने हैं। अहो! दूर्वादल के हरे-हरे, कोमल-कोमल अग्रिम भाग को मुख में लेकर चर्वण क्रिया करते समय, इनका इधर-उधर, कारे-कारे नेत्रों से निरखना बड़ा ही मधुर एवं आकर्षक प्रतीत होता है। चौकड़ी भर-भर के इनकी उछल-कूद बड़ी ही मनोरम है, श्रीकिशोरी जू के कर स्पर्श जनित लाड़-प्यार से ये देव कुमारों के भी स्पर्धा पात्र बन गये हैं, इनके भाग्य-वैभव को देखकर, इन्हीं के साथ मृग बनकर, मैथिली-उद्यान में सदा निवास करने के लिये, ब्रह्मादि-देव भी परमेश्वर से याचना करने लगते हैं। पाले-पोसे हुये शुक-सारिकादि पक्षी, पिंजड़े से निकाल देने पर भी, वाटिका से अन्यत्र जाने के लिये पंखहीन से हो जाते हैं अतिरिक्त मोर-हंस-पारावत-पपीहा-कोयल आदि स्वतन्त्र पक्षी-परिवार भी पाले पक्षियों का अनुकरण करने में अपने को कृतार्थ समझता है। श्रीसुनयनानन्दवर्धिनी जू का कर-स्पर्श, कृपावलोकनि तथा प्यार से दिये हुये, उनके हाँथ के दाने प्राप्त कर, उन्हें सब कुछ प्राप्त किया सा लगता है। श्रीकिशोरी जू का पदन्यास होते ही, वाटिका में पक्षि समूह कलरव करते हुये, उन्हें घेर लेते हैं, छोटे-बड़े सभी वृक्षों की शाखाओं में बैठकर, दर्शनाह्लाद से आनन्दित होकर

श्री सिया जू के चरण प्रान्त तक पहुँचने का साहस करके अपने मस्तक को भूमि पर रख देते हैं, जिनको उठाकर श्री लाड़िली जू अपने हाथ में लेकर प्यार प्रदान करती हैं, उनके भाग्य को कहना ही क्या है ? वे अपने समाज के ही नहीं अपितु कभी सुर-नर-मुनि समाजों के वन्दनीय एवं स्पृहणीय बन जाते हैं। विविध प्रकार के पुष्पित पुष्पों की पंक्तियाँ बरबस अपनी ओर आर्काषित करने वाली हैं दृष्टा की दृष्टि को। चतुर्दिक सुगन्ध से आपूरित भवन प्रान्त सुरभित सरोवर की उपमा उत्पन्न कर रहा है, गुन्जार करती हुई भ्रमरावलियाँ मधुकर वृत्ति को अपनाने वाले भिक्षुकों की भाँति मधुर-मधुर भगवन्नाम ले लेकर एक गृह से दूसरे गृह को गमन करने का प्रदर्शन प्रस्तुत कर रही हैं, वाटिका विहारोपयोगी मणि जटित काञ्चन मार्ग एवं वैदूर्यादि मणि से युक्त स्वर्ण के आलवाल व थालों की सुन्दरता अवर्णनीय है, सूर्य की किरणों के पड़ने से गमलों की चमक-दमक ऐसी आभा उत्पन्न कर रही हैं कि भूमिजा के बाग में बहुत से भूमिज बाल सूर्य गगन गामी सूर्य के प्रचण्ड ताप से संतापित न होने के लिए विविध रंग के फूलों की कढ़ाई किये हुए छत्र सब अपने-अपने सिर पर लगा रखे हैं किन्तु रवि-रश्मियाँ छाते को फोड़कर उन्हें संतप्त करने की क्रिया से विराम नहीं लेती परन्तु आल-बाल के दिवाकर साहस न छोड़कर उत्साहित बने रहते हैं, उनका मुख मार्तण्ड अप्रभ-नहीं होता। दूर्वादल के हरित वस्त्र को धारण किये हुए पुहुमि पुष्पों के अपने बच्चों को अंक में लिये हुए फूली नहीं समाती यदा कहीं अवनिजा आकर पुष्प-वाटिका की अवनि पर समेत सखी-सहेलियों के विचरने लगती हैं तदा भूमि, भूमिजा के कोमल-कोमल पदों का स्पर्श अपने हृदय में प्राप्त कर परम प्रसन्न होती हैं, देवता भी भूमि के भूरि-भाग की प्रशंसा कर-करके कुसुमों की वर्षा करने लगते हैं। (वायु किशोरी-वाटिका का स्पर्श कर कृतकृत्य हो जाता है मुनि-मन-मोहिनी सुगन्ध के लोभ का संवरण न करके उसे अपने साथ ले जाता है और यत्र-तत्र उसका वितरण करके प्रान्त-प्राणियों के घ्राण-छिद्र के द्वारा हृदय देश में उसे प्रवेश कराता है, जिससे लोग परमार्थ-पथ के अनुयायी एवं वैदेही व वैदेही-वल्लभ के चरण-कमलों का पराग पीने के लिए लुब्ध मुग्ध मधुप बन जाते हैं।)

''स्वर्णिम संध्या का सुहावना समय था, अपनी भाभी के आने की प्रतीक्षा, बार-बार भवन के सिंह पौर की ओर दृष्टि डालने के लिए बाध्य कर रही थी वैदेही को। प्रेमिक का हृदय प्रति सम्बन्धी के प्राप्ति काल की प्रतीक्षा में क्षण को कल्प समझने लगता है, यद्यपि वैदेही-बन्धु की वधू से

निश्चित समय का उल्लंघन नहीं हुआ, तथापि भ्रातृ-भार्या-स्नेह-कातरा किशोरी जू को उनकी भाभी का सीता-सदन पहुँचना बहु विलम्बित प्रतीत हो रहा था। अहो ! वैदेही का विमल स्वभाव वैदेही में ही है उसको अन्यत्र कहीं दृष्टि व श्रवण का विषय बनाया नहीं जा सकता।''

''भ्रातृ-भार्या को दृष्टि-पथ में लाते ही भाभी-भाभी ! कहकर किशोरी जू का दौड़ पड़ना अपनी सखी-सेविकाओं के साथ भूखे को अन्न क्षेत्र में पक्वान बँटते समय पहुँच जाने के समान था। सिद्धि कुँवरि के कटि में स्वर्णिम करों की करधनी पहनाकर प्रेम-विभोर हो गईं वे ! भाभी-ननँद के मिलन ने दोनों ओर की सखी-सेविकाओं को प्रेम के सात्विक भावों से भावित करके मूर्छा दशा में स्थित कर दिया। तत्पश्चात् श्रीराजकिशोरी जू ने अपनी भ्रातृ-भार्या के पाणि-पङ्कजों को अपने करकञ्जों से पकड़कर अन्तःकक्ष के अपने आसन में बैठा दिया और स्वयं भाभी के अङ्क में बैठकर उनसे लिपटी हुई तज्जनित आनन्द की अनुभूति करने लगीं।''

'हमारा आसन तो अपनी अभिन्न हृदया भाभी जी की गोद ही है चन्द्रकले ! जिस आसन का कोमलत्व, प्रियत्व, सुखदत्व अनिर्वच है, परमार्थ चिन्तन करते समय वह स्वरूप-स्थित करने में विलम्ब नहीं करता, प्रेम-पयस्वनी में परिवृद्धि लाने में तो वह बड़ा ही कुशल है। (कहकर श्री सुनयना नन्दवर्धिनी जू लिपट गईं सिद्धि के हृदय से।'' उस आनन्द की अनुभूति श्री सिया जू की भाभी तो अन्तः प्रदेश में कर रही थीं किन्तु उसका प्रकाश बाह्य प्रदेश में हो रहा था। देह में स्थिति न होने से वैदेही का सहज आत्म प्रकाश प्रेम-रश्मियों के माध्यम से बिना मेघ के मार्तण्ड के सदृश परिकरों की दृष्टि का विषय बन कर उन्हें प्रेमाश्रु विमोचन करने को बाध्य कर रहा था।) ''हम सब सखियों की स्वामिनी का कथन सर्वथा सत्य है। अपनी भ्रातृ-भार्या का परम विशुद्ध पूर्ण प्रेम प्राप्त करके ही श्री राज किशोरी जू अपनी सखी-सेविकाओं समेत बारहों मास आनन्द के झूले में झूलती रहती हैं, भाभी के अङ्क-सुख की अनुभूनि आपकी कृपा से सखियों के ज्ञान प्रदेश से बाहर नहीं है अतः वह वैसी ही है जैसी श्री स्वामिनी जू की वाणी द्वारा वर्णित की गई है। जय हो आप युगल मूर्तियों की ! जहाँ द्वैत की भीति पर भी उसके अद्वैत चित्त का ही दर्शन द्रष्टा को होता है वहाँ के अन्तर्देश का स्पर्श करना, विधि-हरि-हर के सामर्थ्य से भी असम्भव है। अद्वैतानन्द की स्थिति का अनुभव युगल मूर्तियों को भी द्वैत के नेत्रों से उसी प्रकार किया